प्रकरण इकतीस

इस्कान के विरुद्ध धमकी

बोस्टन
दिसम्बर २१, १९६९

प्रभुपाद के एक सौ से अधिक शिष्य और अनुयायी बोस्टन के लोगन हवाई अड्डे के इंटरनेशनल टर्मिनल की लाबी में इकट्ठे हैं। कीर्तनानन्द स्वामी न्यू वृन्दावन से भक्तों से भरे पूरे ट्रक के साथ आया है। न्यूयार्क के भक्त एक विशाल पताका लिए आये हैं, जिस पर लिखा है : न्यूयार्क इस्कान द्वारा श्रील प्रभुपाद का स्वागत। अधिकतर भक्त अपनी धोतियों और साड़ियों के ऊपर भारी कोट पहने हैं और कीर्तन कर रहे हैं; कुछ मृदंग और मंजीरे बजा रहे हैं। कुछ शिशु और बच्चे भी मौजूद हैं। प्रतीक्षा करते हुए यात्री यह सब आश्चर्य से देख रहे हैं।

प्रभुपाद का वायुयान देरी से चल रहा है, और भक्त कीर्तन करते जा रहे हैं; प्रायः वे बाहें फैलाकर हवा में उछलने-कूदने लगते हैं। उन्होंने बहुत अरसे से प्रभुपाद को नहीं देखे हैं, और वे इस आशा में प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उनका दर्शन किसी भी क्षण मिल सकता है। एक सार्वजनिक स्थान में होने के औचित्य का ध्यान न रखते हुए भक्त उमंग से भरकर कीर्तन में लगे हैं, जो उन्हें लगभग अनियंत्रित भाव-समाधि की ओर लिए जा रहा है। स्टेट पुलिस आगे बढ़कर सर्वप्रधान भक्त, ब्रह्मानंद से कहती है, "शान्त हो जाओ!" कीर्तन मंद पड़कर जप की मरमराहट में बदल जाता है, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।

लंदन से वायुयान पहुँचता है। भक्तों को शीशे से बन्द सीमाशुल्क और अप्रवासन क्षेत्र में प्रविष्ट करते हुए यात्री दिखाई नहीं देते, क्योंकि शीशे की दीवार नीचे छह फुट तक काले रंग से रंग दी गई है। दीवार के ऊपर से देखने का प्रयत्न करते हुए भक्त एक-दूसरे को आगे की ओर दबा रहे हैं। वे सरगरमी से कीर्तन करते जा रहे हैं, कुछ तो जैसे भावविभोर हो रहे हों। अचानक वे दीवार की दूसरी ओर प्रभुपाद का एक उठा हुआ हाथ, जिसमें माला की थैली है, देखते हैं। वे केवल उनका उठा हुआ हाथ और माला की थैली

देख सकते हैं। वे पागल हो उठते हैं।

भक्त निर्भय होकर मृदंग और करताल बजाने लगते हैं, कीर्तन फिर फूट निकलता है : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। अद्वैत आँसू बहाता हुआ, करतालों को एक-दूसरे से टकरा रहा है और कीर्तन कर रहा है। ब्रह्मानंद ऊपर-नीचे उछल रहा है और सीमा-शुल्क-कक्ष में प्रभुपाद को देखने की कोशिश करता हुआ अनियंत्रित रूप से रो और चिल्ला रहा है—"प्रभुपाद। प्रभुपाद।"

सीमा-शुल्क वालों से निबटकर प्रभुपाद अचानक भक्तों के सामने प्रकट होते हैं। कीर्तनानन्द स्वामी, जो अभी तक गम्भीर बना रहा था, हवाई अड्डे की कुर्सियों के को फाँदता है और उनकी ओर दौड़ता है। हर एक दूसरों को ढकेलता और भागता हुआ इस प्रयत्न में है कि वहाँ पहुँच जाये, जहाँ प्रभुपाद हैं।

लम्बी उड़ान के कारण प्रभुपाद के केसरिया वस्त्रों में सिलवटें पड़ गई हैं। और वे एक बुना हुआ स्वेटर पहने हैं। वे अपनी सफेद प्लास्टिक की अटैची बाएं हाथ में लिए हैं; अपनी दाहिनी बांह, जिसकी तर्जनी अंगुली और अंगूठा माला की थैली से बाहर निकले हैं, वे फिर ऊपर उठाते हैं। वे अपने बच्चों को प्रसन्नतापूर्वक देखकर आश्चर्यजनक ढंग से मुसकराते हैं। भक्तजन जयजयकार करते हैं, "प्रभुपाद की जय हो।"

जब प्रभुपाद हवाई अड्डे के प्रतीक्षा-कक्ष में केसरिया कपड़े से आच्छादित एक सोफे की ओर बढ़ते हैं, तो भक्तजन जैसे भावना-तरंग में बहते हुए उनके साथ चलते जाते हैं। वे उनके नजदीक-से नजदीक पहुँचना चाहते हैं। प्रभुपाद बैठ जाते हैं। न्यू वृन्दावन का परमानन्द अपना शिशु बालक, जो इस्कान में जन्मा पहला लड़का था, उसे लिए हुए प्रभुपाद के पास उनके आशीर्वाद के लिए आता है। प्रभुपाद मुसकरा रहे हैं और भक्तजन पूर्णतः निस्संकोच आनन्दविभोर हैं।

"हयग्रीव कहाँ है ?" प्रभुपाद पूछते हैं। भक्तों द्वारा प्रश्न दुहराया जाता है और हयग्रीव भीड़ में से आगे बढ़ता है और प्रभुपाद के चरणों में श्रद्धा अर्पित करने के लिए बड़बड़ाता हुआ सपाट लेट जाता है। विभिन्न इस्कान केन्द्रों के प्रधान एक-एक करके आगे आते हैं और प्रभुपाद के गले में माला पहनाते हैं।

प्रभुपाद भक्तों के पार, कैमरा लिए हुए संवाददाताओं को और विस्मय, जिज्ञासा तथा तिरस्कार से भरे दर्शकों को देखते हैं। बगल में खड़ा एक व्यक्ति कहता है, "मैं समझता हूँ यह कोई राजनीतिज्ञ है।"

"तो," प्रभुपाद अपना प्रवचन आरम्भ करते हैं, "आध्यात्मिक गुरु की उपासना भगवान् की तरह होनी चाहिए। लेकिन यदि वह सोचता है कि वह भगवान् है, तो वह व्यर्थ का व्यक्ति है। मेरा अनुरोध है कि कृष्णभावनामृत को साम्प्रदायिक मत के रूप में न

लें।..." प्रभुपाद समझाते हैं कि कृष्णभावनामृत महान् विज्ञान है, जिसकी परिणति भगवान् के पवित्र प्रेम में होती है। "इन लड़के-लड़कियों ने कृष्ण के विषय में पहले कभी नहीं सुना था," प्रभुपाद ने कहना जारी रखा, "किन्तु अब उन्होंने कितने सहज भाव से इसे स्वीकार कर लिया है—क्योंकि वह सहज है।" प्रभुपाद कहते हैं कि वे वृद्ध हैं पर उन्हें पूर्ण विश्वास है कि यदि वे दिवंगत भी हो जाते हैं, तो उनके शिष्य कृष्णभावनामृत आन्दोलन चलाते रहेंगे। इस आन्दोलन में ऐसी शक्ति निहित है कि वह हर एक के हृदय में भगवान् की चेतना जगा सकता है।

व्याख्यान के बाद प्रभुपाद खड़े होते हैं और शिष्य उन्हें बाहर प्रतीक्षा में खड़ी एक लिमोसिन कार के पास ले जाते हैं, जो उन्हें हाल में गिरी हुई बर्फ में से होकर ले जाएगी।

• • •

कार में प्रभुपाद के साथ प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे—कीर्तनानन्द स्वामी, ब्रह्मानंद, सत्स्वरूप, और पुरुषोत्तम; एक पेशेवर चालक कार चला रहा था। प्रभुपाद लंदन के बारे में बताने लगे। उन्होंने कहा कि लंदन एक प्राचीन, वैभवशाली नगर था, और मन्दिर एक बहुत प्रभावशाली क्षेत्र में ब्रिटिश म्यूजियम के निकट था। "वह, जिसे डाउनटाउन कहते हैं, वहाँ स्थित है।"

वे एक विज्ञापन-पट्ट के पास से निकले, जिस पर कान्टिनेन्टल आहार-गृह और विश्राम-कक्ष का विज्ञापन अंकित था। विज्ञापन-पट्ट को देखकर प्रभुपाद बोले, "चिन्तामणि—यह क्या है? ओह, नहीं, कान्टिनेन्टल।"

'चिन्तामणि'—भक्त एक-दूसरे को देखने लगे। प्रभुपाद की समझ में यह आया था कि विज्ञापन पट्ट पर 'चिन्तामणि' लिखा था, जिसका तात्पर्य उन आध्यात्मिक मणिओं से है, जिनसे दिव्य कृष्ण-लोक निर्मित है। किन्तु प्रभुपाद स्वयं चिन्तामणि थे—विशुद्ध और निर्दोष—जो बोस्टन जैसे ठंडे और गंदे नगर में आ रहे थे, फिर भी हमेशा कृष्ण का स्मरण करते हुए। उनके साथ होना कितने सौभाग्य की बात थी! सत्स्वरूप ने व्यावसायिक चालक की ओर देखा, "गाड़ी सावधानी से चलाओ।" उसने कहा।

पीछे की सीट पर से प्रभुपाद बहुत धीमे बोल रहे थे, जबकि भक्त सामने की सीट से पीछे मुड़कर उन्हें देख रहे थे। अंधेरे में वे उनकी झलक-भर देख पाते थे और उनकी मैत्रीपूर्ण, फिर भी अकल्पनीय उपस्थिति से सर्वथा संभ्रमित थे। "अभी उस दिन," प्रभुपाद बोले, "मैं जार्ज हैरिसन से कह रहा था कि यदि तुम समझते हो कि तुम्हारा धन तुम्हारा है, तो यह माया है।"

समर टनेल पहुँचने पर लिमोसिन एक स्वचालित कर-बूथ पर खड़ी हो गई, जहाँ

यात्री स्वत: मार्ग–कर जमा करते थे। चालक ने एक सिक्का एक ढालू छिद्र में डाल दिया और लाल रोशनी हरी हो गई। प्रभुपाद ने पूछा कि क्या कभी यात्री बिना मार्ग–कर दिए सीधे चले जाते थे, और ब्रह्मानंद ने बताया कि उस हालत में एक घंटी बजने लगेगी। आगे वे लोग समर टनेल में घुसे, जो सामान्यत: एक भयानक, कष्टप्रद स्थान था, लेकिन तब नहीं जब यात्रा प्रभुपाद के साथ हो रही हो।

"मैंने जार्ज से अपना धन कृष्ण को देने को कहा," प्रभुपाद बोले, "इस तरह नहीं कि वह अपना धन मुझे दे तभी कृष्ण को मिलेगा, वरन् इस तरह कि वह अपना धन जैसे भी हो कृष्ण के लिए खर्च करे।"

"किन्तु कृष्ण के लिए मार्ग तो केवल आप हैं," ब्रह्मानन्द ने कहा।

प्रभुपाद के मुख पर मंद हँसी आ गई। "हाँ," उन्होंने स्वीकार किया, "कम–से–कम पश्चिम में।"

प्रभुपाद के साथ यात्रा करना, उनके मुख से मामूली या गम्भीर विषयों पर बातें सुनना और उनकी अगाध मुख–मुद्रा या स्नेहिल मुसकान को देखना, बड़े सौभाग्य की बात थी। ऐसा अवसर विरले ही मिलता था।

"मैं विशुद्ध शिक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता हूँ," प्रभुपाद कहते गये। "*भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं, "मेरे प्रति समर्पण करो,' और मैं कहता हूँ 'कृष्ण के प्रति समर्पण करो।' यह बहुत सरल है। बहुत से स्वामी आते हैं और अपने आपको कृष्ण कहते हैं और इससे सब कुछ नष्ट हो जाता है। किन्तु मैं कहता हूँ, "कृष्ण को समर्पित हो।" मैं कोई नई या अपमिश्रित बात नहीं कहता। कृष्ण कहते हैं, "मेरे प्रति समर्पित हो," और मैं कहता हूँ, "कृष्ण के प्रति समर्पित हो।"

प्रभुपाद ने ब्रह्मानन्द से पूछा कि क्या *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका की पचास हजार प्रतियाँ छप रही थीं। ब्रह्मानन्द ने उत्तर दिया कि हाँ। "बहुत अच्छा," प्रभुपाद बोले। सत्स्वरूप की ओर मुड़ते हुए प्रभुपाद ने पूछा कि 'कम्पोजिंग मशीन' कैसा काम कर रही थी और सत्स्वरूप ने उत्तर दिया कि हर मास सैकड़ों पृष्ठ कम्पोज हो रहे थे। प्रभुपाद ने कीर्तनानन्द स्वामी से न्यू वृन्दावन के विषय में पूछा। न्यू वृन्दावन की उन्नति होगी, प्रभुपाद बोले, केवल कठिनाई यह थी कि जाड़े में वह 'बन्द' हो जाता था।

कार में बैठे हर भक्त को प्रभुपाद के साथ संक्षिप्त विचार–विनिमय से पूर्ण संतोष रहा और सभी भक्त आध्यात्मिक आनन्द से विह्वल होकर उनके साथ यात्रा करते रहे।

अधिकतर भक्त आगे भागकर बेकन स्ट्रीट के मन्दिर पहुँच गये थे और उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। लिमोसिन आकर रुकी, और एक बार फिर भक्तजन अपने गुरु महाराज के प्रति भक्ति दिखाने में अनियंत्रित हो उठे। राजोचित पदविन्यास के साथ

प्रभुपाद पैदल रास्ते के ऊपर चले, ड्योढ़ी की सीढ़ियों पर पहुँचे, सामने का दरवाजा पार किया और प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने चारों ओर की नीललोहित दीवारों और हरे-गुलाबी दरवाजे के रास्ते को देखा। जय-जयकारों और प्रेमपूर्ण दृष्टियों से घिरे हुए वे मुसकराने लगे।

दूसरी मंजिल का कक्ष, जो अब मन्दिर का कमरा था, १५० से अधिक शिष्यों और अतिथियों से भरा था और जब प्रभुपाद सीढ़ियों से ऊपर चढ़ रहे थे, तो उनका शरीर लोगों को क्रमशः उभरता दिखाई देने लगा। वे अब भी अपनी श्वेत अटैची अपने बाएं हाथ में और माला की थैली दाहिने हाथ में लिए थे। और यद्यपि वे अभी-अभी जाड़े की रात बिताकर आ रहे थे, तथापि वे कोट नहीं पहने थे, सिर्फ सूती कपड़े और एक स्वेटर पहने थे। वे प्रफुल्लित लग रहे थे।

प्रभुपाद वेदिका के पास गये। ऐसा लगता था जैसे वे हर वस्तु को देख रहे हों : लाल मखमल के छत्र के नीचे सिंहासनासीन राधा-कृष्ण के लघु अर्चाविग्रह, भगवान् चैतन्य और उनके संकीर्तन दल के चित्र के ऊपर एक ऊँचे आसन पर जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम के अपेक्षया बड़े अर्चाविग्रह, वेदिका के निकट एक छोटे मेज पर रखा चमकता हुआ आरती का पीतल का सामान। अपने सचिव और सह-यात्री पुरुषोत्तम की ओर मुड़ते हुए उन्होंने पूछा, "तुम क्या सोचते हो, पुरुषोत्तम? क्या यह बहुत बढ़िया नहीं है?"

कमरा पार करते हुए प्रभुपाद लाल मखमली व्यासासन पर बैठ गये। वे बोलने लगे और श्रोता ध्यानपूर्वक सुनने लगे। लंदन के केन्द्र की, वहाँ अर्चाविग्रह की उपासना की, राधा-कृष्ण के लिए दक्षतापूर्वक बनाई गई पूरियों की प्रशंसा करने के बाद वे वेदिका की ओर उन्मुख हुए और बोले, "यदि आप अर्चाविग्रहों के पात्र साफ करते हैं, तो आपका हृदय स्वच्छ हो जायेगा," उन्होंने कहा, अर्चाविग्रहों की साज-सज्जा पर पालिश करके भक्तजन अपने गुरु महाराज के हृदय को भी स्वच्छ बनाते हैं। जब वे सरल और शुद्ध भाव से अर्चाविग्रह की भक्ति पर ध्यान केन्द्रित करते हुए बोल रहे थे, तो भक्तजन अकस्मात् कृष्णभावनामृत के इस पक्ष के महत्त्व की अनुभूति करने लगे। "इन वस्त्रों को किसने बनाया है?" प्रभुपाद ने राधा और कृष्ण के छोटे गोटदार वस्त्रों को देखते हुए पूछा।

"शारदीयाने," कुछ भक्त बोल उठे।

प्रभुपाद मुसकराए, "बहुत धन्यवाद।" तब सिर पीछे झटककर वे हँस पड़े। "क्या शारदीया अपने पति से अब भी लड़ाई करती है?"

भक्तजन और अतिथि हँसने लगे, जबकि शारदीया ने अपने हाथों से अपना मुख ढँक लिया। "अपने पति से लड़ो मत।" प्रभुपाद ने कहा, "वह अच्छा लड़का है। जो भी कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है, वह अच्छा है।" तब उन्होंने शेष मकान देखना चाहा।

लगभग एक सौ भक्त प्रभुपाद क्या कहते हैं, यह जानने के लिए उनके साथ नीचे उतरे। यद्यपि वे भीड़ से घिरे थे, तथापि वे आराम से चल रहे थे और उन्हें कोई जल्दी नहीं थी। वे प्रेस के कमरे में गये जो एक बड़ा हाल था और मन्दिर के कमरे के ठीक नीचे था। कमरा एक बड़े और पुराने आफ-सेट प्रेस, एक कागज काटने की मशीन, एक कागज मोड़ने की मशीन और कागज की गाँठों से भरा था, और उससे छपाई की दुकान जैसी महक आ रही थी। अद्वैत ने, जो प्रेस का प्रबंधक था और हरी खाकी पोशाक पहने था, प्रभुपाद को नमन किया। फिर मुसकराते हुए उसने सिर उठाया, तो प्रभुपाद ने आगे बढ़कर उसे गले से लगा लिया और अपनी बाँह को उसके सिर के इर्द-गिर्द रख दिया। "बहुत अच्छा," उन्होंने कहा।

छपाई की मशीन के सामने खड़े होकर प्रभुपाद ने हाथ जोड़े और अपने गुरु महाराज की प्रार्थना की, "जय ॐ विष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज प्रभुपाद की जय।" अद्वैत ने प्रभुपाद से कहा कि प्रेस को एक दिव्य नाम दें। "इस्कान प्रेस," प्रभुपाद तथ्य-परक ढंग से बोले, मानों उसका नाम पहले से ही रखा गया हो।

"सभी मशीनों को साफ रखें," प्रभुपाद ने कहा, "और वे बहुत दिन तक चलेंगी। इस्कान का हृदय यही है।"

"इस्कान के हृदय आप हैं, प्रभुपाद," एक भक्त बोला।

"और यह मेरा हृदय है।" प्रभुपाद ने कहा।

मुख्य प्रेस के कमरे से बाहर आकर प्रेस सम्बन्धी अन्य सुविधाओं की जानकारी पाने के लिए प्रभुपाद इधर-उधर घूमने लगे। भक्तों की भीड़ कदम-कदम उनके पीछे चलती रही। भक्त कभी आपस में धक्कम-धक्का करते, कभी झुककर एक-दूसरे के आगे निकल जाते, कभी अंगुलियों के बल खड़े हो जाते। प्रभुपाद ने एक छोटे-से सुखद कमरे में झाँका, जहाँ एक भक्त कम्पोजिंग कर रहा था। उन्होंने कहा कि टाइप सेट करने वालों को पहले बहुत धीरे चलना चाहिए और इस तरह वे दक्ष हो जायेंगे। अद्वैत की ओर मुड़ते हुए उन्होंने कहा, "भारत में जो कोई हिन्दी जानता है, वह अपने पास गीता प्रेस की कोई-न-कोई पुस्तक रखता है। इसी तरह जो कोई भी अंग्रेजी जानता है, उसके पास इस्कान प्रेस का कोई प्रकाशन होना चाहिए।"

अन्य लेखकों की तुलना में प्रभुपाद काफी ठोस लेखन-कार्य कर चुके थे। किन्तु वे मात्र "एक लेखक" नहीं थे। उनका लक्ष्य संसार को ऐसे साहित्य से आप्लावित कर देना था, जिसमें कृष्ण की महिमाओं का वर्णन हो। प्रभुपाद का इस्कान अब तीन वर्ष पुराना हो चला था, तो भी उनके शिष्य दिव्य साहित्य के मुद्रण और वितरण की योजनाओं को

कार्यान्वित करना अभी आरम्भ कर रहे थे।

मुद्रण एक महत्त्वपूर्ण कदम था—पहला कदम। महीनों पहले प्रभुपाद ने लिखा था,

> प्रेस निरन्तर चलता रहना चाहिए और हम अपरिमित साहित्य सृजन करेंगे। यदि प्रेस भलीभाँति चलता रहा, तो मैं तुम्हें हर दो महीनों में एक पुस्तक छापने की सामग्री दे सकूंगा। हमारे पास कृष्णभावनामृत आन्दोलन के लिए अत्यधिक सामग्री है।

और बोस्टन आने से कुछ समय पहले उन्होंने लिखा था :

> संकीर्तन और *बैक टु गॉडहेड* और हमारे अन्य साहित्यों का वितरण हमारे आन्दोलन का क्षेत्र कार्य है। मन्दिर में उपासना करना दूसरे नम्बर पर आता है।

अब इस्कान हर महीने *बैक टु गॉडहेड* की पचास हजार प्रतियाँ छापता था और प्रभुपाद उसकी अधिकाधिक बिक्री की आशा रखते थे।

भीड़ से भरे ठंडे तहखाने में भक्तों, प्रेस की मशीनों और दिव्य साहित्य के बीच खड़े होकर प्रभुपाद ने बताया कि वे इस्कान प्रेस को किस तरह काम करते देखना चाहते थे। उन्होंने कहा कि एक टेप पूरा हो जाने के बाद वे लिप्यान्तरण के लिए उसे डाक से बोस्टन भेज देंगे। लिप्यान्तरण में दो दिन से अधिक नहीं लगने चाहिए। तब दूसरा संपादक लिप्यान्तरित पांडुलिपि का दूसरी बार सम्पादन करने में दो दिन और लेगा। कोई संस्कृत सम्पादक उसमें स्वर-भेद-चिह्न (*डायाक्रिटीक मार्क्स*) लगा देगा और पाण्डुलिपि कम्पोजिंग के लिए तैयार हो जायेगी।

प्रभुपाद ने कहा कि वह हर महीने पन्द्रह टेप तैयार कर सकते थे, जिसका मतलब था तीन सौ पृष्ठों की पाण्डुलिपि। इस हिसाब से इस्कान प्रेस को हर दो महीने में एक पुस्तक या वर्ष-भर में छह पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए। प्रभुपाद कम-से-कम साठ पुस्तकें प्रकाशित करना चाहते थे। इसलिए उनके प्रेस के कर्मचारियों के पास अगले दस वर्षों के लिए पर्याप्त काम था। उन्होंने कहा यदि भक्तजन केवल उनकी पुस्तकों को लगातार प्रकाशित करते रहें, चाहे इसके लिए उन्हें बारी-बारी से प्रतिदिन चौबीस घंटे काम करना पड़े, तो इससे उन्हें 'महान् प्रसन्नता' होगी। यदि आवश्यक हो, तो वे पुस्तक-प्रकाशन के अतिरिक्त अपने अन्य सभी कार्यकलाप बन्द कर देने को तैयार थे।

यह विशेष अमृतवाणी थी, जिसे सुनने के लिए प्रेस में कार्य करने वाले भक्त प्यासे

थे। पुस्तकों का प्रकाशन प्रभुपाद हृदय से चाहते थे; यह उन्हें सब से अधिक प्रिय था।

• • •

प्रभुपाद के बोस्टन में सप्ताह-भर रहने के दौरान उनका सचिव और सेवक पुरुषोत्तम ड्यूटी पर नहीं जा सका। लंदन में उसकी कठिनाइयाँ बढ़ गई थीं। उनके प्रस्थान के दो दिन पूर्व शंकालु और गमगीन पुरुषोत्तम प्रभुपाद के सामने आया।

पुरुषोत्तम : *मैंने लंदन में अवकाश लेने का निर्णय लिया था। मुझे ऐसा लगा कि वहाँ ऐसे विभिन्न कार्य थे, जिन्हें मैं करना चाहता था। लेकिन मैं उनके साथ रहने के लिए विवश अनुभव करता था, क्योंकि उन्हें मेरी जरूरत थी। मेरा कम-से-कम यह कर्तव्य था कि उन्हें संयुक्त राज्य पहुँचा दूँ। मुझे लगता था कि उन्हें जरूरत थी कि यात्रा में उनके साथ कोई रहे। और मुझे लगा कि मुझे इसे पूरा करना चाहिए और उनकी हर चीज को व्यवस्थित करके रख देना चाहिए, ताकि मैं अपने से यह न कह सकूं कि जब एक पराए देश में उन्हें मेरी इस काम के लिए जरूरत थी, तब मैंने उन्हें छोड़ दिया है।*

मैंने किसी को बताया नहीं। मैंने कुछ नहीं कहा और उनके विरुद्ध मैंने जबान नहीं खोली। मैं अपनी ड्यूटी करता रहा, लेकिन अपने रुख से मैंने उन्हें जता दिया कि पिछले कुछ दिनों से मैं उनसे दूर होता जा रहा था। मैं उन्हें नमन नहीं करता था। मैं उनके कमरे में जाता था, लेकिन नमन नहीं करता था।

पुरुषोत्तम प्रभुपाद के कमरे में प्रविष्ट हुआ, लेकिन उसने नमन नहीं किया। वह खड़ा रहा। उसे बैठने में बड़ी असुविधा हो रही थी, क्योंकि वह जो कुछ कहने जा रहा था, वह बहुत गम्भीर बात थी। प्रभुपाद ने अपनी डेस्क से उसकी ओर ऊपर देखा, "हाँ, पुरुषोत्तम?"

पुरुषोत्तम : *मैं उनसे मिलने के लिए अन्दर गया। मैं जानता था कि मैं उन्हें छोड़ने जा रहा था और इससे मैं बेहद परेशान था। जो भी हो, मैंने उनसे कहा कि मेरे पास आन्दोलन के बारे में, चन्द्रमा के बारे में और अन्य विषयों पर बहुत सारे प्रश्न थे। मेरा उनमें विश्वास नहीं था। वे सारे मामले पर मुझे बहुत अनुकूल लगे और उन्होंने मेरे कहने को सहज भाव से लिया।*

उन्होंने मुझसे कहा, "यदि तुम्हारे पास प्रश्न हैं, तो तुम मुझसे पूछते क्यों नहीं?" और मैंने कहा, "आपने स्वयं कहा है कि हमें प्रश्न उस व्यक्ति से पूछने चाहिए, जिसमें हम समझते हैं कि हम विश्वास कर सकते हैं।" उन्हें जैसे चोट-सी लगी। वे जान गये कि मैं क्या कहना चाहता था। मुझे लगा कि मैंने वास्तव में उन्हें ठेस पहुँचाई है। मैं इतना अवज्ञापूर्ण नहीं लगना चाहता था, लेकिन अब तो जो था, वह सामने था।

वे बोले, "मैंने देखा है कि कुछ समय से तुम ठीक नहीं हो। क्या कोई समस्याएँ है?"

मैंने कहा, "हाँ, मैं उन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करता हूँ।" अनुमानत: मैं जो कुछ कहने जा रहा था, उसके लिए उन्हें तैयार कर रहा था। मैं उस रात को चला जाना चाहता था। इसलिए मैं बोला, "मैं जाना चाहता हूँ।" लेकिन उन्होंने मुझसे कहा, "तुम मेरे साथ इतने दिनों से रहे हो और अब तुम जाने को आकुल हो? क्या तुम रात-भर भी नहीं रुक सकते?" उन्होंने कहा, "कम-से-कम तुम तब तक क्यों नहीं रुकते, जब तक कि मेरा वायुयान न चला जाये?" मैं दो दिन बाद जाने को था। मैंने कहा, "ठीक है, तब मैं वही करूँगा।"

मैं न्यूयार्क वापस जाने को था। वस्तुत: टिकट के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे और उन्होंने मुझे पैसे दिए; उन्होंने मुझे बस का किराया दिया। मुझे यह अच्छा लगा। मैं किसी अन्य से उधार ले सकता था, लेकिन उन्होंने कहा, "तुम इसे लो और बाद में तुम इसे मुझे वापस कर सकते हो।" और मैंने वही किया, अगले सप्ताह मैंने पैसे वापस कर दिए।

हर चीज के बारे में वे बहुत शालीन थे। सचमुच मैंने देखा कि वे संसार को एक विशेष प्रेम-भरे तरीके से देखते थे। मुझे अनुभव हुआ कि कभी-कभी मैं भी चीजों को उनकी तरह प्रेम-भरे तरीके से देख सकता था; मैंने अनुभव किया कि यह दृष्टिकोण—यह तनिक प्रेमपूर्ण चित्तवृत्ति—मुझे उनसे मिली। यह उनके पास थी, और मैंने उसका कुछ अंश उनसे प्राप्त कर लिया। और यह उन चीजों में से एक है, जो उनके बारे में मुझे सदा याद रहती है। और मैं जानता हूँ कि उनके आन्दोलन के माध्यम से मेरा विश्वास ईश्वर में हुआ। उनसे मिलने के पहले मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता था।

पुरुषोत्तम के जाने के बाद प्रभुपाद ने मानव के चन्द्रावतरण और बाद में कृष्णभावनामृत विषयक उसके सन्देह के बारे में भवानन्द से बात की। उन्होंने कहा, "मेरी समझ में यह बात तो आती है कि चूँकि मैंने ऐसा कहा इसलिए वह उसमें विश्वास न करे, परन्तु वह वैदिक-शास्त्रों में अविश्वास कैसे कर सकता था?"

• • •

बोस्टन का मौसम बहुत खराब था। जब वर्षा बन्द हो जाती थी, तब बर्फ गिरने लगती थी, और जब बर्फ का गिरना बन्द हो जाता, तो वर्षा फिर से आ जाती थी। प्रभुपाद सामने के आँगन में घूमने का प्रयत्न करते थे। भवानन्द छाता लिए हुए उनके साथ रहता था। वह सावधानीपूर्वक देखा करता था कि वे बर्फ पर गिर न पड़ें। लेकिन बोस्टन में दिसम्बर के एक सप्ताह के खराब मौसम के बाद प्रभुपाद का जुकाम और बिगड़ने लगा।

उन्होंने लास ऐंजिलेस जाने का निर्णय किया।

• • •

लास ऐंजिलेस
फरवरी २५, १९७०

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के जन्मदिवस की वर्षगांठ के शुभ अवसर पर लास ऐंजिलेस के भक्तों को वेटसेका एवन्यू के नये मन्दिर में जाने की अनुमति प्राप्त हुई। कमरों की सफाई भी नहीं हुई थी और बड़ा हाल बिना किसी साज-सज्जा के था; लेकिन भक्त ला सियनग के पुराने मन्दिर से प्रभुपाद का व्यासासन ले आये और प्रभुपाद ने उस पर अपने गुरु महाराज का एक बड़ा चित्र रखवाया। अपने गुरु महाराज के सामने खड़े होकर प्रभुपाद ने उनकी आरती की, जबकि लगभग पचास शिष्य उनके चारों ओर खड़े होकर उस हाल में हरे कृष्ण कीर्तन करते रहे और नाचते रहे जो प्रायः रिक्त रहता था।

आरती के बाद प्रभुपाद ने शिष्यों से भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के चित्र पर फूल चढ़ाने को कहा। तब, उस समय भी व्यासासन के सामने खड़े हुए उन्होंने कहा कि उनके पास उनके शिष्यों के अतिरिक्त गुरु महाराज को भेंट-स्वरूप देने के लिए उस दिन कुछ नहीं था। तब उन्होंने सभी शिष्यों के नाम जोर से पढ़कर सुनाए।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के बड़े व्यासासन के निकट एक छोटे व्यासासन पर बैठकर प्रभुपाद ने चैतन्य महाप्रभु मिशन के शक्तिशाली आचार्य भक्तिविनोद ठाकुर के पुत्र अपने गुरु महाराज भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का संक्षिप्त इतिहास बताया। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर से अपनी पहली भेंट का स्मरण करते हुए प्रभुपाद ने बताया कि किस प्रकार उनके गुरु महाराज ने उनसे अंग्रेजी-भाषा-भाषी संसार में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने को कहा था। उन्होंने कहा कि यह विशाल मन्दिर भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने भक्तों को कृष्ण की सेवा में उपयोग करने के लिए एक उपहार के रूप में दिया था। भक्तों को वैभव के हाथों बिकना नहीं चाहिए, प्रभुपाद ने कहा, वरन् इस अद्‌भुत स्थान का उपयोग उन्हें धर्मोपदेश के लिए करना चाहिए। यह कहते-कहते प्रभुपाद रोने लगे।

"अब सबके लिए प्रसाद लाओ," प्रभुपाद ने बुलाकर कहा। और भोग आरम्भ हो गया। जबकि भक्तजन पंक्तियों में फर्श पर बैठे थे, प्रभुपाद अपने व्यासासन से परोसने वालों को निर्देश दे रहे थे कि अमुक भक्त के लिए दूसरा समोसा लाओ, अमुक को और चटनी दो, आदि-आदि। उनकी दृष्टि सभी पर थी, वे सबको कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करने को प्रोत्साहित कर रहे थे।

उस दिन तीसरे पहर प्रभुपाद ने घूमकर मकानों को देखा। मुख्य हाल के अतिरिक्त,

जिसे प्रभुपाद चाहते थे कि भक्तजन मन्दिर में बदल दें, उन्होंने उसी के समान एक बड़ा प्रवचन हाल भी देखा। इन दोनों बड़े कमरों के साथ तीन कमरों वाला एक अलग आवास था, महिला और पुरुष भक्तों के लिए पर्याप्त अलग-अलग कमरे थे, गाड़ी खड़ी करने के लिए स्थान था, और सामने लान था। इन सारी भौतिक सुविधाओं के कारण यह केन्द्र इस्कान के सभी केन्द्रों में सर्वोत्तम लगता था। "हम अपने लिए ऐसा बढ़िया स्थान नहीं चाहते," प्रभुपाद ने मन्दिर के अध्यक्ष, गर्गमुनि से कहा। "हम कहीं भी रह सकते हैं। किन्तु ऐसे बढ़िया स्थान से हमें यह अवसर मिलेगा कि हम भले लोगों को आमंत्रित कर सकें कि वे आयें और कृष्णभावनामृत के बारे में जानें।

बिल्डिंग का मूल्य २,२५,००० डालर था जिसमें ५०,००० डालर तुरन्त देने थे, प्रभुपाद के पुस्तक खाते में १०,००० डालर थे, लेकिन वे केवल पुस्तकों के प्रकाशन के लिए थे। इसलिए यद्यपि ऐसी सौदेबाजी में वे व्यक्तिगत रूप से नहीं पड़ना चाहते थे, लेकिन इस मामले में, अपवाद रूप से उन्होंने अन्य मन्दिरों से लास ऐंजिलेस में इस नये 'मुख्यालय' के लिए अनुदान देने को कहा। उन्होंने विश्व के विभिन्न मन्दिरों के अध्यक्षों के पास भवनों के चित्र भी भेजे। इस प्रकार उन्होंने नकद भुगतान के लिए धनसंग्रह कर लिया, और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आविर्भाव दिवस पर इस्कान 'विश्व मुख्यालय' का वैध स्वामी बन गया।

केवल यही एक ऐसा मन्दिर था, जिसका इस्कान वास्तव में स्वामी था, अन्य सारे भवन या तो पट्टे पर थे या किराए पर। प्रभुपाद इस मन्दिर की रूपरेखा स्वयं बनाना चाहते थे। किराए के व्यवसायिकों को बुलाना बहुत महंगा पड़ता, किन्तु प्रभुपाद के बहुत सारे ऐसे शिष्य थे, जो नवीकरण का कार्य करने को उत्सुक थे। करणधर कुछ बढ़ईगिरी, नलसाजी और सामान्य राजगीरी जानता था और अनुभव द्वारा वह और सीख सकता था। भवानंद एक व्यवसायिक डिजाइनर रह चुका था और उसमें प्रभुपाद-प्रेरित उत्साह भरा था कि एक सामान्य चर्च को बदलकर वह उसे श्रीभगवान् के जाज्वल्यमान् भवन में बदल दे। "पहले तुम मेरा आवास तैयार करो," प्रभुपाद ने भवानंद से कहा, "मैं उसमें पहुँच जाऊँ, और तब हम मन्दिर के कक्ष का निर्माण करेंगे।"

भवानन्द : *हमने लास ऐंजिलेस के मन्दिर का एक भाग प्रभुपाद के आवास के लिए चुन लिया और करणधर ने उसमें एक शौचालय बनाया। जब प्रभुपाद कमरों में आये तो वे बोले, "यह मेरा बैठने का कमरा होगा; यह सोने का कमरा होगा।" और जब वे एक तीसरे कमरे में पहुँचे, जिसकी छत में रोशनदान था, तो वे बोले, "यह मेरा पुस्तकालय होगा।"*

प्रभुपाद ने एक बार बोस्टन में मुझ से कहा था कि बालक के रूप में वे ऐसे महल में

रहे थे जिसकी दीवारें नीली थीं, फर्श लाल संगमरमर का था, जिसके किनारे सुनहरे-नारंगी रंग के थे। वह महल कलकत्ता में मल्लिकों का था। इसलिए हमने प्रभुपाद के बैठने के कमरे की दीवारों पर नीला पेंट किया और उसका फर्श सफेद टाइलों से बनाया। उसके पर्दे गहरे नारंगी रंग के साटन के लगाए गये जिन में सुनहरे धागे और सुनहरे किनारे लगे थे। प्रभुपाद को रंगों का यह मिश्रण बहुत पसन्द आया।

सोने के कमरे में मैंने प्रभुपाद से पूछा कि वे अपना पलंग कहाँ चाहते थे और वे बोले, "पलंग कमरे के बीच में रखो।" हमने एक कालीन बिछा दिया था, और प्रभुपाद ने कहा, "अब तुम चादरें लाओ और कालीन को उनसे ढंक दो। भारत में लोग इस तरह के कालीन बिछाते हैं, अच्छे कालीन, और उन्हें चादरों से ढंक देते हैं। और विशेष अवसरों पर वे चादरें हटा देते हैं, अन्यथा वे खराब हो सकते हैं।" अत: मैं बाहर गया और चादरें खरीदकर ले आया।

प्रभुपाद अपने बैठने के कमरे में थे, जब मैं अन्दर गया और कालीन के ऊपर चादरें बिछाने लगा। प्रभुपाद कमरे में आ गये और बोले, "हाँ, यह बहुत बढ़िया है। मैंने फिर एक नई चीज शुरू की। यह तुम सबके लिए नई चीज है कि कालीनों के ऊपर चादरें बिछाई जाँए।" तब उन्होंने मुझसे कहा, "देख लेना किसी चादर में सिकुड़नें न रहें।" मैं कालीन पर अपने हाथों और घुटनों के बल झुका था, प्रभुपाद भी मेरी बगल में अपने हाथों और घुटनों पर झुक गये। हम दोनों चादरों की सिकुड़नें ठीक करने लगे और जब हम यह कर चुके, तो प्रभुपाद ने चादरों के सिरों को कालीन के नीचे दबा दिया।

वे बहुत प्रसन्न थे, क्योंकि हम अपने निजी स्थान में थे। पहले कभी भी हमारा अपना कोई निजी स्थान नहीं था।

मन्दिर कक्ष में प्रभुपाद ने करणधार को बताया कि तीनों वेदिकाएँ कहाँ बनानी हैं। उन्होंने वेदिकाओं की माप बताई और निर्देश दिया कि हर वेदिका के सामने एक जोड़ा कपाट होना चाहिए और उनके ऊपर विष्णु का चिह्न; वेदिका के ऊपर गुरु और गौरांग के लिए एक शंख; बीच में राधा और कृष्ण की वेदिका के ऊपर एक चक्र और गदा; और भगवान् जगन्नाथ की वेदिका के ऊपर एक कमल। गुरु महाराज का व्यासासन मन्दिर कक्ष के दूसरे सिरे पर राधा और कृष्ण के सामने निर्मित होना है। दीवारें पीत वर्ण की होनी चाहिए, जो प्रभुपाद ने कहा, अच्छाई का प्रतीक था। भीतरी छत चंदन से आच्छादित होनी चाहिए और उससे झाड़-फानूस लटकने चाहिए।

वेदिकाओं के पूरी होते ही प्रभुपाद अर्चाविग्रहों को लाना चाहते थे, यद्यपि नवीकरण का कार्य अभी बहुत बाकी था। भक्तों ने एक छत्र-सहित रथ का निमार्ण किया और उसे पुष्पों से सजाया। तब वे अर्चाविग्रहों को ला सियनग बुलवार्ड के पुराने मन्दिर से एक

जुलूस में उनके नये आवास में ले आये।

भवानंद : *जब वे प्रातःकालीन भ्रमण से पहली बार मन्दिर के अपने कमरे में आये, तो वे गुरु-गौरांग की वेदिका के पास गये और उन्होंने प्रणाम किया। हम सबने प्रणाम किया। तब वे उठे और राधा और कृष्ण के पास गये और उन्हें नमन किया और तब जगन्नाथ के पास, और हम सब ने उनका अनुगमन किया। तब हम वापस आये और वे अपने व्यासासन पर बैठ गये और हम लोगों से बोले : "अब तुम सब व्यासासन से राधा और कृष्ण को देखते हुए एक-दूसरे की ओर मुख करके खड़े हो जाओ, एक-दूसरे की ओर मुख करो। इस ओर, उस ओर, एक ओर गुरु को देखो, दूसरी ओर ईश्वर को। और तब पीछे और आगे उस ओर। "इस गलियारे को हमेशा छोड़े रखो," ताकि मैं देख सकूँ।"*

अर्चाविग्रह राजा था, प्रभुपाद ने कहा, और मन्दिर के सभी निवासी उसके निजी सेवक थे। इसलिए मन्दिर को राजभवन जैसा होना चाहिए। प्रभुपाद ने बताया कि धर्मोपदेश के लिए मन्दिर का वैभवशाली होना आवश्यक था, क्योंकि अधिकतर लोग, विशेषकर पाश्चात्य लोग, आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने के लिए सादगी या कठोर दिनचर्या में रुचि नहीं रखते। एक भारतीय कहावत है कि गरीब की बात कोई नहीं सुनता। प्रभुपाद ने कहा कि यदि भक्तजन विज्ञापन दें कि भक्तियोग की कक्षा अमुक खाली मैदान में किसी वृक्ष-विशेष के नीचे होगी, तो वहाँ कोई नहीं आयेगा। किन्तु एक स्वच्छ, सुन्दर भवन जिसमें झाड़-फानूस लगे हों और आरामदेह कमरे हों, बहुत-से लोगों को आकृष्ट करेगा कि वे आयें और पवित्र बनें।

मन्दिर उन लोगों के लिए भी था, जो कृष्णभावनामृत युक्त भक्त की भाँति वहाँ रहना चाहते थे। प्रभुपाद ने कहा कि भक्तों को कहीं भी रहने और सोने के लिए तैयार रहना चाहिए। लेकिन अपने शिष्यों के प्रेमी और संरक्षक पिता के रूप में प्रभुपाद को इसका बड़ा ध्यान था कि विशाल मन्दिर बनाया जाये और उसमें शिष्यों के रहने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ हों। वे अपने परिवार के लिए एक घर बना रहे थे। यह देखना कि उनकी आध्यात्मिक संतानों को रहने और भक्तिमय सेवा के अभ्यास के लिए स्थान हो, प्रभुपाद के मिशन का एक दूसरा पक्ष था।

नये मन्दिर की एक विशेषता श्रील प्रभुपाद की वाटिका थी। भक्तों ने मन्दिर के पीछे के एक बड़े भूमि-खंड को खोदकर उससे मलवा हटा दिया था और वहाँ मिट्टी भर दी थी। भूमिखंड को केरी की दीवार से घेरकर उन्होंने उसमें घास लगवा दी थी और उसके चारों ओर फूलों के बगीचे लगवा दिए थे।

करणधर : *मैंने भू-खंड के भीतरी भाग में चारों ओर कुछ क्यारियाँ बनाई थीं और*

उनमें यत्र-तत्र कुछ पौधे लगा दिये थे। किन्तु प्रभुपाद ने कहा, "नहीं, पौधे सर्वत्र लगाओ। सभी जगह कोई न कोई पौधा होना चाहिए। जहाँ भी जगह हो, वहाँ कुछ न कुछ लगाओ। सब जगह कोई न कोई चीज उगनी चाहिए। वे बगीचे में पौधों की अत्यधिकता चाहते थे, जैसे जंगल या उष्ण कटिबंध क्षेत्र में पौधे हर जगह मनमाने ढंग से अनियंत्रित उगते-बढ़ते रहते हैं।

श्रील प्रभुपाद हमेशा संध्या-समय बगीचे में बैठना पसन्द करते थे, जहाँ फूलों की सुंगध लिए ताजी ठण्डी हवा बहती रहती थी। बगीचे में वार्तालाप के प्रकरण भिन्न भिन्न होते थे, जैसे "श्रीमद्भागवत"—सभी विभिन्न विषय। कभी-कभी भक्तों या अतिथियों के साथ सजीव वार्तालाप होते थे। और कभी-कभी प्रभुपाद सारा समय कीर्तन में बिता देते, वार्तालाप बहुत कम करते। कभी-कभी प्रभुपाद किसी से 'कृष्ण' पुस्तक से पढ़वाकर केवल उसे सुनते रहते।

प्रभुपाद कहते थे कि जब वे बच्चे थे, तब उनकी माँ ने मकान की छत पर एक बगीचा लगा रखा था और शाम को वे उसमें खेलने जाया करते थे। उन्हें वह अब भी याद था। बचपन में उन्हें जो कुछ करना पसन्द था, वह उन्हें अब भी याद था। वे प्रसन्नतापूर्वक उसे स्मरण करते और लोगों को सुनाते थे। प्राय: वे टिप्पणी करते : "मेरी माँ ने मकान की छत पर एक बगीचा लगाया था, और अपने बचपन में मैं शाम को वहाँ जाता था और खेलता था। अब मेरे पास भी जाने के लिए ऐसा एक सुन्दर स्थान हो गया है।"

• • •

प्रभुपाद के व्यक्तिगत निर्देशन में लास ऐंजिलेस केन्द्र शेष इस्कान केन्द्रों के लिए एक नमूना बन गया। उदाहरण के लिए सवेरे की भागवत कक्षा में वे संस्कृत मंत्रों का गायन करते थे और भक्तों से उसका ठीक वैसा ही अनुकरण कराते थे, और उन्होंने आदेश दिया कि उनके सभी मन्दिरों में यह मानक कार्यक्रम लागू किया जाये। मई १९७० में उन्होंने उत्तर अमेरिका और योरप के अपने सभी छब्बीस मन्दिरों के अध्यक्षों को लिखा कि वे लास ऐंजिलेस आकर उनसे मिलें।

> इस समय मैं अपनी सारी शक्ति इस लास ऐंजिलेस केन्द्र पर लगा रहा हूँ, ताकि इसे अर्चाविग्रह की उपासना, आरती, कीर्तन और आवश्यक साज-सज्जा के लिए अन्य केन्द्रों के वास्ते नमूना बनाया जा सके। चूँकि मैंने अपना यात्रा-कार्यक्रम कम कर दिया है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपनी सुविधा के अनुसार यहाँ आयें और कुछ दिन रुककर, यहाँ जो कुछ हो रहा है, उसे स्वयं देखें और

आवश्यक निर्देश के लिए मुझसे मिलें। मुझे आशा है कि सभी केन्द्रों के कार्यक्रम एक साथ यहाँ के मानक के अनुरूप ही हो जायेंगे।

मन्दिरों के जितने अध्यक्ष प्रभुपाद से मिलने आये उनमें से अधिकतर अपने जीवन के तीसरे दशक में थे। वे बहुत-से व्यावहारिक और दार्शनिक प्रश्न साथ लेकर आये थे। वे अपनी नोटबुक अपने साथ लाये थे, जिनमें वे हर चीज लिखते जाते थे—मन्दिर के कार्यक्रम के लिये समय-विभाजन से लेकर उसकी रंग-योजना तक, कीर्तनों में प्रयुक्त होने वाली तरह-तरह की लयें, किसी संकीर्तन-दल की व्यवस्था कैसे की जाती है, इत्यादि। और शायद सबसे अधिक महत्त्व की बात यह थी कि प्रभुपाद ने जो कुछ किया था, जो कुछ उनसे व्यक्तिगत रूप से कहा, वे उन सब चीजों को लिखते गये। तब मन्दिरों के अध्यक्ष अपने-अपने केन्द्रों को—बर्कले, हैमबर्ग, टोरन्टों, सिडनी आदि—लौट गये। वे आनन्द से विह्वल और तत्पर थे, उन दर्जनों नये मानदंडों को कार्य में परिणत करने के लिए जिन्हें विश्व मुख्यालय लास ऐंजीलेस में उन्होंने प्रभुपाद से आत्मसात् किया था।

प्रभुपाद यद्यपि अपने आन्दोलन का अधिकाधिक विस्तार करने की बात अब भी करते थे, लेकिन लगता था कि वे लास ऐंजिलेस में ही सन्तुष्ट रहकर अपने मन्दिरों के अध्यक्षों, अपनी संकीर्तन-मंडलियों और अपनी पुस्तकों के द्वारा संसार के विभिन्न भागों में पहुँचना चाहते थे। तब भी नई योजनाएँ बराबर सामने आ रही थीं और प्रभुपाद ने इस्कान के सभी मामलों की देखभाल के लिए अपने चुने हुए बारह शिष्यों से गठित एक शासी मंडल की स्थापना की चर्चा फिर की। और अधिक संन्यासियों को दीक्षित करने की बात भी की, जिन्हें वे भारत ले जाकर परिव्राजक धर्मोपदेशक के रूप में प्रशिक्षण देना चाहते थे। और अपनी पुस्तकों के नियमित और समुचित प्रकाशन को सुनिश्चित करने के लिए वे एक विशेष समिति संगठित करना चाहते थे, जो केवल प्रकाशन का कार्य देख सके।

प्रभुपाद लास ऐंजिलेस में आनन्दपूर्वक रहने लगे—कभी वे अपने विश्वव्यापी धार्मिक आन्दोलन की व्यवस्था में लगे होते, कभी लास ऐंजिलेस के मन्दिर में अपनी सतत-वर्धमान भक्त-मंडली से संस्कृत मंत्रों का जप कराते, कभी उषाकाल की पूर्व बेला में अकेले बैठे अनुवाद करते रहते।

एक दिन लंदन से एक रेकर्ड पहुँचा। लंदन के भक्तों ने, जो जार्ज हैरिसन की सहायता से एक एलबम बना चुके थे, अब एक नये केवल 'गोविन्द' रेकर्ड का उन्मोचन किया था। उसके गीत में वे ही श्लोक थे, जो प्रभुपाद ने उन्हें *ब्रह्म-संहिता* से सिखाए थे और जिनमें से हर श्लोक का अन्त "*गोविन्दम् आदि-पुरुषम् तमहं भजामि*" से होता था।

प्रभुपाद ने आदेश दिया कि रेकर्ड को मन्दिर के सवेरे के कार्यक्रम में बजाया जाया करें। दूसरे दिन जब मन्दिर जाकर उन्होंने श्रीविग्रह को नमन किया, और कक्षा आरम्भ करने के लिए व्यासासन पर स्थान ग्रहण किया, तब रेकर्ड बजने लगा।

सहसा, प्रभुपाद को भाव-समाधि लग गई। उनका शरीर काँपने लगा और उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। भक्तजन अपने गुरु महाराज की भावविभोरता की किंचित् झलक प्राप्त करके, हरे कृष्ण का गायन करने लगे मानो वे जप कर रहे हों। समय पल-पल करके मंद गति से बीतने लगा। अन्त में प्रभुपाद बोले : *गोविन्दं आदि-पुरुषं तमहं भजामि।* वे फिर मौन हो गये। तब उन्होंने पूछा, "हर एक ठीक है न?" उत्तर में एक तुमुल ध्वनि उठी, "जय प्रभुपाद।" और उन्होंने *श्रीमद्भागवत* की कक्षा आरम्भ की।

• • •

"*वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञे न बुझय*—वैष्णव के मन को कोई नहीं समझ सकता।" केवल एक शुद्ध भक्त ही किसी दूसरे शुद्ध भक्त को भलीभाँति समझ सकता है। किन्तु प्रभुपाद के जीवन के मुख्य कार्यकलापों का अवलोकन करने से हम जान सकते हैं कि वे जो कुछ करते थे, वह भगवान् कृष्ण के प्रति शुद्ध सेवाभाव से करते थे और कृष्ण के प्रति समर्पण कैसे किया जाता है, वह उसका सच्चा उदाहरण था। वे अपने शिष्यों को प्राय: प्रोत्साहित करते थे और उनकी प्रशंसा भी करते थे और भगवान् चैतन्य के आनन्दपूर्ण संकीर्तन आन्दोलन में अधिकाधिक भाग लेने के लिए उन्हें सदा प्रेरित करते रहते थे। किन्तु वे अपने शिष्यों के दोषों को भी प्रदर्शित करते रहते थे और इन दोषों को देखना कभी-कभी उनके और उनके शिष्यों, दोनों के लिए बड़ा कष्टकारक होता था।

एक दिन जब प्रभुपाद लास ऐंजिलेस मन्दिर के अपने कमरे में आये, तो उन्होंने देखा कि एक भक्त ने, जो कमरा साफ कर रहा था, उनके चित्र को उलटा रख दिया था। यह एक मामूली भूल थी। लेकिन इससे भक्त की गलत मनोवृत्ति की सूचना मिलती थी। हर प्रात: भक्तजन अपने गुरु महाराज की प्रार्थना, उनको भगवान् के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि मानकर, करते हैं। तो भला किसी सच्चे भक्त को यह कैसे नहीं दिखाई देगा कि वह भगवान् के प्रतिनिधि को उलटा खड़ा कर रहा है।

एक अधिक गम्भीर भूल का उदाहरण लें। प्रभुपाद मन्दिर में गये, अर्चाविग्रहों को नमन किया और उनके सुंगधित स्नान-जल से चरणामृत लेने को आगे बढ़े। यह उनके नित्य कार्यक्रम का अंग था। प्रात:कालीन भ्रमण के बाद वे मन्दिर में जाते थे और अर्चाविग्रहों को नमन करते थे, उस समय 'गोविन्द' रेकर्ड बजता रहता था। तब एक भक्त उनकी दाहिनी हथेली में चरणामृत की कुछ बूँदें देता था और प्रभुपाद उसे चुसकी लेकर पी जाते थे। उन्होंने इस सेवा-भक्ति की चर्चा 'दि नेक्टर आफ डिवोशन' (भक्ति का

अमृत) पुस्तक में की थी : "उनके (भगवान्) चरणकमलों से प्रवाहित होता हुआ सुंगध और पुष्पों से सुवासित जल नीचे आता है और उसे एकत्रित करके उसमें दधि का मिश्रण करते हैं। इस प्रकार यह चरणामृत न केवल सुस्वादु सुगंध से भर जाता है, वरन् उसमें महान् आध्यात्मिक मूल्य भी होता है... जो भक्त अर्चाविग्रह के दर्शन और उपासना के लिए आते हैं, वे चरणामृत की तीन बूँदें श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते हैं और अपने आपको दिव्य आनन्द में विभोर अनुभव करते हैं।"

किन्तु उपर्युक्त प्रात: बेला में जब श्रील प्रभुपाद ने चरणामृत ग्रहण किया, तो उनकी त्योरियाँ चढ़ गईं। किसीने उसमें नमक मिला दिया था! वे मन्दिर के कमरे को पार कर अपने व्यासासन पर जाकर बैठ गये, और सैकड़ों भक्तों से भरे उस कमरे में उन्होंने पूछा : "चरणामृत में नमक किसने मिलाया है?" साड़ी पहने हुई एक युवा लड़की खड़ी हुई और भयभीत मुसकान के साथ बोली कि यह उसने किया था।

"तुमने ऐसा क्यों किया?" गम्भीर मुद्रा में प्रभुपाद ने पूछा।

"मैं नहीं जानती थी।" हीं-हीं करके वह बोली।

प्रभुपाद गर्गमुनि की ओर मुड़े, "किसी जिम्मेदार को रखो।"

हर एक को प्रभुपाद के क्रोध का अनुभव हुआ। एक अप्रिय क्षण से मन्दिर का शुद्ध वातावरण खराब हो गया। किसी भक्त द्वारा कृष्ण की उपासना उनके प्रतिनिधि, गुरु महाराज को प्रसन्न करके की जाती है; इसलिए गुरु महाराज को अप्रसन्न करना भक्त की आध्यात्मिक अयोग्यता का सूचक है। गुरु महाराज केवल एक सिद्धान्त ही नहीं हैं, वे एक व्यक्ति हैं—श्रील प्रभुपाद।

जब इस्कान प्रेस ने बोस्टन में एक नई पुस्तक पर प्रभुपाद का नाम गलत रूप में मुद्रित किया, तो उन्हें गहरी चिन्ता हुई। *श्रीमद्भागवत* के दूसरे स्कन्ध के एक छोटे पेपरबैक अध्याय के मुखपृष्ठ पर उनका नाम केवल ए.सी. भक्तिवेदान्त छपा था। उसके साथ प्रथागत "कृष्णकृपामूर्ति" एवं "स्वामी प्रभुपाद" नहीं छपा था। श्रील प्रभुपाद के नाम को उनकी आध्यात्मिक अर्थवत्ता से लगभग विच्छिन्न करके छापा गया था। इस्कान प्रेस के एक अन्य प्रकाशन में प्रभुपाद का उल्लेख इस्कान के 'आचार्य' के रूप में हुआ था, यद्यपि प्रभुपाद बार-बार इस बात पर बल दे चुके थे कि वे 'संस्थापक-आचार्य' थे। आचार्य या आध्यात्मिक गुरु बहुत-से थे और बहुत-से होंगे, किन्तु इस्कान के संस्थापक-आचार्य एकमात्र कृष्णकृपामूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ही थे।

और भी खराब बात यह हुई कि जब प्रभुपाद ने नये *भागवतम्* का अध्याय पहली बार खोला, तो उसकी जिल्द टूट गई और पन्ने बाहर बिखर गये। प्रभुपाद नाक-भौं सिकोड़ने लगे।

बोस्टन के भक्तों को प्रभुपाद के क्रोध के बारे में सुनकर, तुरन्त ज्ञान हो गया कि श्रील प्रभुपाद के नाम को गलत छापकर उनसे भयंकर भूल हुई थी। आध्यात्मिक गुरु के पद के महत्त्व को कम करना गम्भीर अपराध था और उन्होंने तो इस अपराध का प्रकाशन भी कर दिया था। उसकी प्रतिक्रियाओं का सामना करना उनके भक्तों के लिए कठिन था, और वे जानते थे कि इसके पहले कि वे आध्यात्मिक उन्नति कर सकें, उन्हें अपना मनोभाव बदलना पड़ेगा। प्रभुपाद ने इन भूलों के पीछे जो मनोभाव था, उसकी आलोचना की और उनकी आलोचनाएँ भक्तों के लिए उपदेशप्रद रहीं। जब तक कि वे गुरु महाराज के परम पद के विषय में भक्तों को न बताते, तब तक भक्त उसे कैसे जान पाते?

एक दिन सवेरे *श्रीमद्भागवतम्* की कक्षा के आरम्भ में प्रभुपाद ने एक महिला भक्त का नाम पुकारा "नंदराणी।" वह विनयपूर्वक खड़ी हो गई। "क्या तुम हर दिन सोलह बार जप करती हो?"

"हाँ, मैं प्रयत्न करती हूँ, प्रभुपाद।"

"यही समस्या है।" मन्दिर के अध्यक्ष की ओर मुड़ते हुए प्रभुपाद बोले। यदि नंदराणी, जो एक वरिष्ठ, जिम्मेदार महिला थी, नियमित रूप से जप नहीं कर रही थी, तो निश्चय ही उसके अधीन नई महिलाएँ भी ऐसा नहीं कर रही होंगी। यह व्यवस्थापकों की भूल थी। प्रभुपाद ने भक्तों की प्रशंसा की थी और उन्हें प्रोत्साहित किया था कि कड़ी मेहनत करके उन्होंने मन्दिर का नवीकरण किया और नित्य सड़कों में घूमकर वे भजन करते थे और पत्रिकाएँ बाँटते थे। लेकिन किसी भक्त द्वारा यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आदेश की अवहेलना थी कि वह माला के निर्धारित जप पूरा न करे।

नंदराणी ने जो बात नहीं बताई, वह यह थी कि मन्दिर के अधिकारियों ने उससे कहा था कि माला के सोलह चक्र पूरा करना आवश्यक नहीं था, यदि वह अन्य कार्यों में लगी हो। उन्होंने ऐसा ही कहा था, यद्यपि प्रभुपाद ने दीक्षा के समय शिष्यों को स्पष्ट आदेश दिया था कि प्रतिदिन माला के कम-से-कम सोलह जप अवश्य पूरे होने चाहिए।

आगे एक अन्य घटना हुई। सवेरे की कक्षा में प्रभुपाद भगवान् चैतन्य के एक पार्षद, सार्वभौम भट्टाचार्य के बारे में बता रहे थे। भक्तों के बीच देखते हुए उन्होंने पूछा, "कौन बता सकता है कि सार्वभौम भट्टाचार्य कौन थे?" कोई नहीं बोला। प्रभुपाद ने प्रतीक्षा की। "तुम में से कोई नहीं बता सकता कि सार्वभौम भट्टाचार्य कौन थे?" उन्होंने पूछा। एक लड़की ने हाथ उठाया; उसने कहा, "उनके बारे में कुछ पढ़ा है।" बस।

"क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती?" प्रभुपाद ने पुरुषों की ओर देखा। "तुम लोगों को अगुवा बनना चाहिए। यदि पुरुष आगे नहीं बढ़ते, तो महिलाएँ आगे नहीं बढ़ सकतीं। तुम्हें ब्राह्मण बनना है। तब तुम्हारी पत्नियाँ ब्राह्मण बनेंगी। किन्तु यदि तुम ब्राह्मण नहीं हो,

तो वे क्या कर सकती हैं?" प्रभुपाद ने कहा कि अपने जप-कीर्तन में सुधार लाये बिना और कृष्ण-चेतनामय साहित्य पढ़े बिना भक्तों में भगवान् चैतन्य के सन्देश को प्रसारित करने के लिए आवश्यक शुद्धता नहीं आ सकती।

इधर स्थानीय अनियमितताएँ श्रील प्रभुपाद की गहरी चिन्ता का कारण बन रही थीं, उधर उनके भारत के शिष्यों ने जो पत्र लिखे, उनसे वहाँ की विचित्र बातों का पता लगा, और वे और अधिक चिन्तित हो गये। अमेरिका के भक्तों को लिखे गये एक पत्र से मालूम हुआ कि उनके भारत के गुरु-भाइयों को प्रभुपाद की इस उपाधि पर आपत्ति थी। उनके अनुसार केवल भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को प्रभुपाद कहा जाना चाहिए और प्रभुपाद को वे "स्वामी महाराज" कहते थे। प्रभुपाद को यह भी मालूम हुआ कि उनके कुछ शिष्यों का कहना था कि आध्यात्मिक गुरु केवल प्रभुपाद ही नहीं थे। वे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की पुस्तकें पढ़ना चाहते थे—मानों कुछ ऐसी नई शिक्षाएँ प्राप्त करने के लिए, जिन्हें प्रभुपाद ने अभी तक प्रकट न किया हो।

प्रभुपाद ये बातें इस्कान के लिए खतरनाक मानते थे। आध्यात्मिक जीवन में उन्नति आध्यात्मिक गुरु में निर्विवाद विश्वास पर आधारित थी, और प्रभुपाद के लिए ये नये विचार गुरु विषयक निरपेक्ष धारणा के विरुद्ध सापेक्ष धारणा के सूचक थे। ऐसी धारणा उनके द्वारा स्थापित सारी चीजों को नष्ट कर सकती थी; कम-से-कम ऐसी धारणा वाले का अपना आध्यात्मिक जीवन तो नष्ट हो ही सकता था।

प्रभुपाद जानते थे कि यद्यपि उनके शिष्य कभी कभी अज्ञानता का परिचय देते थे, किन्तु उनमें दुर्भाव नहीं था। फिर भी भारत के इन पत्रों से एक ऐसे आध्यात्मिक रोग का पता चलता था, जो प्रभुपाद के वहाँ के कई गुरु-भाइयों ने उनके शिष्यों को दिया था। प्रभुपाद पहले ही दुखी थे कि उनके कुछ गुरु-भाइयों ने भगवान् चैतन्य के जन्म-स्थान, मायापुर में भूमि प्राप्त करने में उनकी सहायता करने से इनकार कर दिया था। यद्यपि प्रभुपाद ने प्रार्थना की थी कि उनके गुरु-भाई भूमि क्रय करने में उनके अनुभवहीन शिष्यों की सहायता करें, किन्तु गुरु-भाइयों ने ऐसा नहीं किया था। वास्तव में, कुछ ने उनके विरुद्ध आचरण किया था। प्रभुपाद ने अपने एक गुरु-भाई को लिखा था, "मुझे यह जानकर खेद हुआ है कि हमारे कुछ गुरु-भाइयों ने षड्यंत्र रचा है कि मायापुर में मुझे स्थान न मिले।"

इस्कान के विरुद्ध हर खतरे के प्रति प्रभुपाद संवेदनशील थे। वे अपने शिष्यों को सावधानीपूर्वक समझा चुके थे कि उन्होंने प्रभुपाद की उपाधि क्यों स्वीकार की और यह भी बता चुके थे कि शिष्य को चाहिए कि अपने आध्यात्मिक गुरु को भगवान् कृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि मानें, और उसकी उपेक्षा करके भूतपूर्व आध्यात्मिक गुरुओं तक पहुँचने

का प्रयत्न न करें। ये बातें उन्होंने सावधानीपूर्वक अपने शिष्यों को बता दी थीं, किन्तु अब भारत में गैरजिम्मेदारी से की गई कुछ आलोचनाओं के कारण उनके कुछ शिष्यों का विश्वास कमजोर पड़ रहा था। कदाचित् इसी घातक प्रदूषण के फैलने का परिणाम था कि इस्कान प्रेस में भूलें हुई थीं और लास ऐंजिलेस में भी विसंगत गलतियां प्रकट हुई थीं। आध्यात्मिक गुरु के पद के सापेक्ष होने के विषय में चर्चा केवल माया-जनित थी। माया इस्कान के भक्तों को भ्रमित करने की कोशिश कर रही थी। यह उसका काम था कि वह प्रतिबद्ध आत्माओं को कृष्ण की सेवा से विरत करे।

हाल की घटनाओं से प्रभुपाद के लेखन-कार्य में बाधा होने लगी। वे लास ऐंजिलेस में तीव्र गति से कार्य कर रहे थे और हाल में ही उन्होंने 'कृष्ण' का दूसरा और अन्तिम खंड समाप्त किया था। और उसी टेप पर, जिस पर उन्होंने 'कृष्ण' का अन्तिम अध्याय अंकित कराया था, वे तुरन्त *श्रीमद्भागवतम्* के ग्यारहवें स्कन्ध का सारांश शुरू कर चुके थे। पर धीरे-धीरे उनका लेखन-कार्य बन्द हो गया।

करणधर : प्रभुपाद के अनुवाद-कार्य में गहरी एकाग्रता की जरूरत थी। वे विशाल *भागवतम् के कई खंडों को और कभी-कभी अन्य कई छोटे ग्रंथों को एक साथ खोल लेते थे और किसी न किसी बात के लिए कभी-कभी उनको देखते थे। वे अपना चश्मा लगाकर बैठ जाते थे और श्रुतिलेख रिकार्ड करने वाली मशीन में बोलते जाते थे, और वे पढ़ने में पूरी तरह डूबे होते थे। कभी कभी वे कोई संक्षिप्त टिप्पणी तैयार करते, तब अपनी किसी एक पुस्तक में देखते, फिर दूसरी में देखते, फिर पीछे लौटकर किसी पृष्ठ पर देखते, कुछ लिखते और तब मशीन में बोलकर लिखाते। इसके लिए गहरी एकाग्रता की जरूरत होती। मैं समझता हूँ कि यही कारण था कि प्रभुपाद यह कार्य अधिकतर रात में, देर सांध्यकालीन झपकी लेने के बाद, करते थे। रात में एक या दो बजे से लेकर वे सवेरे छह या सात बजे तक कार्य में डूबे होते थे। उस समय शान्ति रहती थी और वे अपने कार्य में डूब सकते थे।*

किन्तु जब प्रभुपाद इस्कान की समस्याओं के कारण चिन्ताग्रस्त हो गये, तो उनके कार्य में बाधा पड़ गई। उनका समय आगंतुक भक्तों या मुझसे या जो कोई भी मिल जाता, उससे विचार-विमर्श करने में जाने लगा। वे प्रस्तुत मामलों के बारे में सोचने या समस्याओं पर चिन्तन करने में लग जाते और अनुवाद-कार्य करने में ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थ हो जाते। इन कठिनाइयों से वे चिन्ताग्रस्त हो गये और उनके बारे में सोचने लग गये। उन्होंने कहा, "मैं अपने आपको एकाग्रचित्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं इस समस्या के बारे में सोचता रहा हूँ।"

यद्यपि आध्यात्मिक गुरु को अपने शिष्यों की भूलों का परिताप भोगना पड़ता है, पर

प्रभुपाद का परिप्रेक्ष्य केवल नकारात्मक नहीं था। वे मन्दिर में भजन कीर्तन करते रहे और व्याख्यान देते रहे और अपने आन्दोलन के नेताओं को लास ऐंजिलेस के आदर्श केन्द्र में आने के लिए आमंत्रित करते रहे, पर उन्होंने जहाँ कहीं रोगग्रस्त मनोवृत्ति पाई, उसका भी उपचार किया। उदाहरण के लिए, जब गुरुदास ने लंदन से उन्हें लिखा कि उन लोगों ने एक भारतीय अतिथि को प्रभुपाद के व्यासासन पर बैठकर भाषण करने दिया था, तो प्रभुपाद ने उनकी भूल को सुधारने हेतु तुरन्त जवाब दिया।

> मुझे आश्चर्य है कि तुम लोगों ने श्रीमान् परीख को व्यासासन पर कैसे बैठने दिया। तुम जानते हो कि व्यासासन केवल व्यासदेव के प्रतिनिधि, आध्यात्मिक गुरु के लिए होता है। किन्तु श्रीमान् परीख इस परम्परा में नहीं हैं कि वे व्यास के प्रतिनिधि बन सकें, न ही उन्हें वैष्णव सिद्धान्तों का ठोस ज्ञान है। तुम्हारे पत्र से पता चलता है कि कभी कभी व्यासासन से श्रीमान् परीख अरविन्द दर्शन पर विचार प्रकट करते हैं। मुझे आश्चर्य है कि तुम लोगों ने यह कैसे होने दिया है। मेरे विचार से तुम लोगों की ये सब भूलें, जिनकी चर्चा तुमने अपने पत्र की अन्तिम दो पंक्तियों में की है, तुरन्त ठीक करनी चाहिए। मेरे विचार से तुम लोग जो सबसे अच्छा काम कर सकते हो, वह यह है कि उनकी यह कक्षा बन्द कर दो। बकवास सहन नहीं करनी चाहिए।

तमाल कृष्ण ने पेरिस से एक पत्र लिखा और उसमें प्रभुपाद से आध्यात्मिक गुरु की पूर्णता के विषय में दार्शनिक प्रश्न पूछे और प्रभुपाद ने उनके पूरे उत्तर दिए, किन्तु कड़ाई के साथ।

> आध्यात्मिक गुरु सदैव मुक्त होता है। जीवन की किसी भी अवस्था में उसे सामान्य जीव समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। आध्यात्मिक गुरु का यह पद तीन प्रकार से प्राप्त किया जाता है। एक है साधन सिद्ध। इसका तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो भक्ति के नियमित सिद्धान्तों का पालन करके मुक्ति प्राप्त करता है। दूसरा है कृपा सिद्ध, जिसका तात्पर्य उस पुरुष से है, जो कृष्ण की कृपा से मुक्त होता है। तीसरा नित्य सिद्ध है, जो जीवन-पर्यन्त कृष्ण को विस्मृत नहीं करता। जीवन की पूर्णता के ये तीन लक्षण हैं।
>
> जहाँ तक नारद का सम्बन्ध है, पूर्वजन्म में वे एक दासी के पुत्र थे, किन्तु भक्तों की कृपा से कालान्तर में वे सिद्ध हो गये और अगले जन्म में वे नारद हुए,

जो भगवान् की कृपा से कहीं भी विचरण करने को पूर्ण स्वतंत्र थे। तो, यद्यपि वे पूर्वजन्म में दासी-पुत्र थे, किन्तु इससे उनके पूर्ण आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं हुई। इसी तरह कोई भी जीव, जो प्रतिबद्ध है, जीवन की पूर्णता की अवस्था उपर्युक्त उपायों से प्राप्त कर सकता है और इसका ज्वलंत उदाहरण नारद मुनि हैं।

इसलिए मैं नहीं समझता कि तुमने मेरे पूर्वजन्म के बारे में क्यों पूछा है। क्या मैं भौतिक प्रकृति के नियमों से बँधा था? यह स्वीकार करते हुए कि मैं भौतिक प्रकृति के नियमों से बँधा था, मुझे पूछना है कि इससे आध्यात्मिक गुरु बनने में क्या कोई बाधा है? तुम्हारा क्या मत है? नारद मुनि के जीवन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि पूर्वजन्म में वे एक प्रतिबद्ध आत्मा थे, किन्तु उससे उनके आध्यात्मिक गुरु बनने में कोई बाधा नहीं हुई। यह नियम न केवल आध्यात्मिक गुरु पर वरन् प्रत्येक जीव पर लागू होता है।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं नहीं कह सकता कि अपने पूर्वजन्म में मैं क्या था, किन्तु एक महान् ज्योतिषी ने गणना करके बताया था कि पूर्वजन्म में मैं एक चिकित्सक था और मेरा जीवन निष्पाप था। इसके अतिरिक्त *भगवद्गीता* की उक्ति को पुष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि, *शुचिनाम् श्रीमताम् गेहे योग भ्रष्टाभिजायते* जिसका तात्पर्य यह है कि योगभ्रष्ट योगी किसी सम्पन्न परिवार में या पवित्र पिता से जन्म लेता है। कृष्ण की कृपा से वर्तमान जीवन में मुझे ये दोनों सौभाग्य प्राप्त हुए। मैंने एक पवित्र पिता से जन्म पाया और कलकत्ता के एक सर्व-सम्पन्न और अभिजात परिवार (काशीनाथ मल्लिक) में मेरा लालन-पालन हुआ। इस परिवार के राधा-कृष्ण श्रीविग्रह ने उन्हें मिलने के लिए मेरा आवाहन किया और इसलिए पिछली बार जब मैं कलकत्ता गया, तो अपने अमेरिकन शिष्यों के साथ मैं उस मन्दिर में रहा। यद्यपि पापमय जीवन के चारों सिद्धान्तों में लिप्त होने के लिए मुझे काफी अवसर प्राप्त थे, क्योंकि मेरा सम्बन्ध एक बहुत सम्पन्न परिवार से था, पर कृष्ण द्वारा मेरी सदैव रक्षा हुई और सारे जीवन में मैंने कभी नहीं जाना कि अवैध यौनाचार, नशा, मांस-भक्षण या जुआ क्या होता है। जहाँ तक मेरे वर्तमान जीवन का सम्बन्ध है, मुझे उसमें किसी ऐसे समय की याद नहीं है, जब मैंने कृष्ण को विस्मृत किया हो।

प्रभुपाद का विचार था कि कुछ नेता इस्कान की व्यवस्था में उलझ गये थे और उस पर अपना स्वयं का आधिपत्य जमाना चाहते थे। अपनी कक्षाओं में वे केवल अप्रत्यक्ष रूप

से इसकी चर्चा करते थे, ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने इस बात का पर्दाफाश किया था कि कुछ भक्त पर्याप्त मात्रा में भजन-कीर्तन या अध्ययन नहीं कर रहे थे। फलतः अधिकतर भक्तों को प्रभुपाद की चिन्ता का पता नहीं था। किन्तु प्रभुपाद अपने कमरे में या बगीचे में बैठे हुए प्रायः अपनी चिन्ता व्यक्त करते थे। वे चाहते थे कि उनके शिष्य इस्कान की व्यवस्था संभालें, लेकिन इसके लिए उनका मन शुद्ध होना जरुरी था। केवल तभी प्रभुपाद अपने ग्रंथ-प्रणयन में ध्यान लगा सकते थे। जून में उन्होंने ब्रह्मानंद को लिखा,

> अब मेरी इच्छा है कि मैं अपना पूरा समय पुस्तकों के लिखने और अनुवाद करने में लगाऊँ, और अब ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि हमारी सोसाइटी स्वायत्त-शासित हो। मैं समझता हूँ कि महत्त्वपूर्ण मामलों को देखने के लिए हमें केन्द्रीय शासी मंडल बनाना चाहिए। मैं गर्गमुनि से इसके बारे में पहले ही बात कर चुका हूँ। इसलिए यदि तुम रथयात्रा उत्सव तक वापस आ सको, तो हम इस सम्बन्ध में सैन फ्रांसिस्को में प्रारम्भिक बैठक कर सकते हैं।

• • •

जुलाई में प्रभुपाद चतुर्थ वार्षिक इस्कान रथयात्रा के अवसर पर सैन फ्रांसिस्को गये। यह अब तक के उत्सवों में सब से बड़ा उत्सव था, जिसकी शोभायात्रा गोल्डेन गेट पार्क से होती हुई सागर-तट गई और उसमें दस हजार लोगों ने भाग लिया। प्रभुपाद अस्वस्थ थे और वे आधी यात्रा के पूरी होने तक, आधा दिन, जुलूस में शामिल नहीं हुए। वे रथ के सामने सड़क में नाच रहे थे, जबकि एक सौ शिष्य कीर्तन करते और करताल और मृदंग बजाते उन्हें घेरे हुए थे।

उसके बाद प्रभुपाद रथ में सवार होना चाहते थे, जैसाकि उन्होंने गत वर्ष किया था, लेकिन उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें रोका। उन्होंने बताया कि कुछ देर पहले गुंडों के एक गुट ने गड़बड़ी पैदा की थी और प्रभुपाद का रथ में बैठना खतरनाक हो सकता था। प्रभुपाद इससे सहमत नहीं थे, पर अन्त में वे राजी हो गये और अपनी कार में बैठकर सागर-तट पहुँचे।

सागर-तट पर फेमिली डाग आडिटोरियम में प्रभुपाद ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया, "यहाँ आने के लिए मैं आप सबको धन्यवाद देना चाहता हूँ। यद्यपि मेरी तबियत ठीक नहीं है, लेकिन यहाँ आना मैंने अपना दायित्व समझा, क्योंकि आपने भगवान् जगन्नाथ के रथयात्रा-उत्सव में सम्मिलित होने की कृपा की है। मैंने अपना दायित्व समझा कि मैं आऊँ, आपको देखूँ और आपको सम्बोधित करूँ।" प्रभुपाद का स्वर निर्बल था।

बाद में सैन फ्रांसिस्को के अपने आवास में प्रभुपाद ने शिकायत की कि उन्हें रथ में नहीं बैठने दिया गया। हरे कृष्ण आन्दोलन के नेता के रूप में उन्हें रथ में बैठना चाहिए था। उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें न केवल रोका ही था, वरन् कुछ शिष्य रथ में प्रमुख स्थान पर बैठे थे—मानो वे उनका स्थान ले रहे हों।

• • •

प्रभुपाद ने रथयात्रा के लिए एकत्रित बहुत-से मन्दिर-अध्यक्षों से कहा कि वे आपस में मिलकर इस्कान की व्यवस्था के लिए एक शासी-मंडल बनाने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करें। भक्तों ने ऐसा किया और प्रभुपाद को सूचना दी कि उनका विचार था कि उनमें से केवल किसी एक को मुख्य प्रतिनिधि के रूप में चुना जाये।

उनकी समझ में नहीं आया था। प्रभुपाद ने कहा कि शक्ति समूह में होनी चाहिए, किसी एक व्यक्ति में नहीं। चूँकि वे इस्कान के संस्थापक-आचार्य थे, इसलिए एक अन्य एकाकी नेता की क्या आवश्यकता थी? उन्होंने उनसे फिर बैठक करने को कहा।

• • •

लास ऐंजिलेस लौटकर प्रभुपाद ने घोषणा की कि वे अपने बहुत-से शिष्यों को संन्यास आश्रम में दीक्षित करेंगे। शिष्य-समुदाय ने उमंग-पूर्वक उत्सव की तैयारी की। प्रभुपाद ने कहा कि संन्यासी अपने मन्दिरों को त्यागकर भ्रमण और धर्मोपदेश करेंगे। इस्कान के लिए यह अभूतपूर्व परिवर्तन था, एक सनसनी थी, और भक्तों को यह बात बहुत अच्छी लगी।

यद्यपि प्रभुपाद संन्यास आश्रम की दीक्षा अपने कुछ बहुत आगे बढ़े हुए शिष्यों को दे रहे थे, पर उन्होंने तब भी कहा कि संन्यास की दीक्षा उन शिष्यों को उनकी भौतिक इच्छाओं के पाश से मुक्त होने के लिए दी जा रही थी। उन्होंने दीक्षा की तिथि दो सप्ताह बाद, जुलाई अन्त में निश्चित की।

• • •

लास ऐंजिलेस में एक दिन प्रभुपाद से मिलने वाले एक भक्त ने, जो उनके कक्ष में विनम्रतापूर्वक उनसे वार्तालाप कर रहा था, पूछा कि प्रभुपाद ने उसके हाल के एक पत्र में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर क्यों नहीं दिए थे। प्रभुपाद को ऐसे किसी पत्र का स्मरण नहीं हो पाया। अपने सचिव के पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि उनका सचिव आने वाले पत्रों को प्रायः मन्दिर के कुछ नेताओं को दिखाता था, जो अपने विवेकानुसार उन पत्रों को रोक

लेते थे, जिन्हें वे बहुत मामूली या आपत्ति-जनक समझते थे।

प्रभुपाद को आघात पहुँचा। उनके और उनके शिष्यों के बीच में आने की किसी की हिम्मत कैसे हुई? अपने आप निर्णय लेने का किसी को क्या अधिकार था? एक शिष्य अपने गुरु महाराज की डाक को सेंसर कैसे कर सकता था?

यद्यपि प्रभुपाद ने सम्बन्धित शिष्यों को डाँट बताई, किन्तु इस घटना से उनके दिमाग पर जो भारी बोझ था, उसमें और वृद्धि हो गई। भारत से आने वाले पत्रों द्वारा प्रसारित आध्यात्मिक रोग के विचार ने उन्हें फिर क्षुब्ध किया। लास ऐंजिलेस में उन्होंने किसी को अपने इतना निकट नहीं पाया कि जिससे वे आध्यात्मिक गुरु के महत्त्व के बारे में बात कर सकें, जिसे इतनी संजीदगी से घटाया जा रहा था। चूँकि उनकी चिन्ता का उनके शरीर पर बुरा असर हो रहा था, वे बीमार पड़ गये और उनका खाना-पीना बन्द हो गया।

करणधर : *मैंने कुछ बातें सुनी थी, किन्तु 'चलते जाओ' के भाव से उन पर पर्दा डाल दिया गया था। प्रभुपाद भी ऐसी चीजों के बारे में अधिक बात नहीं करते थे। तब भी एक बार, जब संन्यासी लास ऐंजिलेस से चले गये थे, तब उनके कमरे में प्रभुपाद ने मुझसे पूछा कि क्या जो कुछ हो रहा था उसे मैं समझ रहा था। मैंने कहा, "हाँ, मैं समझता हूँ।" पर वास्तविकता यह थी कि मैं अधिक कुछ नहीं जानता था।*

उस समय, जो भक्त संकीर्तन के लिए जाया करते थे, वे गली में कीर्तन कर रहे थे और प्रभुपाद अपनी डेस्क के सामने बैठे थे। भक्तों का कीर्तन सुनकर वे पीछे की ओर मुड़े और अपनी खिड़की से नीचे भक्तों की दिशा में देखकर मुसकराने लगे। तब वे मेरी ओर मुड़े, "वे निर्दोष हैं।" उन्होंने कहा, "उन्हें इस धंधे में शामिल मत करो।"

करणधर अब भी नहीं समझ पा रहा था और वह नहीं जानता था कि प्रभुपाद उनको किस धंधे में शामिल न करने की बात कर रहे थे। पर वह जानता था कि संन्यासियों के सिर पर कोई छाया मंडरा रही थी।

प्रभुपाद ने तीन विश्वस्त शिष्यों से अनुरोध किया कि वे उनके साथ लास ऐंजिलेस जाँए।

रूपानुग : *मैं बफैलो में था और फोन की घंटी बजी। किसी ने कहा, "श्रील प्रभुपाद फोन पर हैं।" मैं बोला, "क्या? तुम मजाक कर रहे हो।" यह श्रील प्रभुपाद नहीं थे, वरन् प्रभुपाद का सेवक देवानंद था। देवानंद ने कहा, "श्रील प्रभुपाद चाहते हैं कि आप लास ऐंजिलेस आ जायें।" मैंने कहा, "क्या गड़बड़ है?" वह बोला, "हाँ, वे नहीं चाहते कि..." तब उसने कहा, "श्रील प्रभुपाद अब आप से इस बारे में बात करना चाहते हैं।"*

तो, श्रील प्रभुपाद फोन पर आये और ज्योंही मैंने उनकी आवाज सुनी, मैंने उन्हें प्रणाम किया। तब मैंने कहा, "श्रील प्रभुपाद, क्या गड़बड़ है?" उन्होंने कहा, "तुम्हें

मालूम नहीं कि मैं बीमार था?" मैंने कहा, "नहीं।" वे बोले, "तुम्हें तुरन्त आ जाना चाहिए।"

तब मैंने कहा, "उह... उह... श्रील प्रभुपाद मुझे देवानंद से बात करने दीजिए।" मैं नहीं जानता था कि क्या हो रहा था, इसलिए मैंने देवानंद से पूछा, "मुझे बताओ कि क्या हो रहा है।" तब वह बोला, "श्रील प्रभुपाद ने कहा है कि जब आप यहाँ आयेंगे, तब वे आप से बात करेंगे। वे हर चीज समझाकर बताएँगे।"

भगवानदास : एक दिन संकीर्तन से वापस आने के बाद मुझे रूपानुग का फोन मिला और उसने बताया कि वह लास ऐंजिलेस जा रहा था। प्रभुपाद ने उसे यह कहकर बुलाया था कि वहाँ कुछ गड़बड़ी थी। वह मुझे अधिक नहीं बता सका, लेकिन उसने कहा कि वापस आने पर वह मुझे फोन करेगा।

इससे मेरा दिमाग चकराने लगा। संकीर्तन से वापस आने के बाद गरमी और पसीने से लथपथ मैं कुर्सी पर बैठ गया और प्रभुपाद और जो कुछ हो रहा था, उसके विचार में मेरा मन डूब गया। मैंने प्रभुपाद के सचिव, देवानंद से बात करने के लिए लास ऐंजिलेस फोन किया। उसने कहा कि सचमुच उस समय वह कुछ नहीं बता सकता था। मुझे आशा थी कि किसी तरह मुझे स्थिति के बारे में कुछ अधिक जानकारी मिल सकेगी। लेकिन कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद मैं अन्दर नहाने चला गया।

मैं स्नान-घर में था कि किसी ने अचानक दरवाजा खटखटाया। "प्रभुपाद फोन पर हैं, वे आपसे बात करना चाहते हैं।" मुझे विश्वास था कि कहीं कोई गलतफहमी है—यह कैसे हो सकता है कि गुरु महाराज फोन पर हों? जो भी हो, मैं स्नान-घर से भीगे शरीर बाहर निकाला और टेलीफोन उठाकर बोला, "हलो?"

देर तक कोई आवाज नहीं आई। तब अचानक दूसरे सिरे से मुझे श्रील प्रभुपाद की आवाज सुनाई दी : "भगवान दास?"

"हाँ," मैं बोला, "श्रील प्रभुपाद, कृपया मेरा प्रणाम स्वीकार करें। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" मैं पूर्णतः सत्र था। तब प्रभुपाद की आवाज धीरे-धीरे फोन पर आने लगी। "बहुत-सी चीजे हैं, जो तुम्हें करनी हैं, लेकिन पहली चीज यह है कि तुम यहाँ तुरन्त आ जाओ।" मैंने कहा, "ठीक है, श्रील प्रभुपाद, मैं वहाँ तुरन्त पहुँचता हूँ।" इसके साथ हम दोनों ने फोन रख दिए।

लास ऐंजिलेस की हवाई-यात्रा के लिए मैंने धन की व्यवस्था की। और जब डेट्रायट में मैं वायुयान में बैठा तो ऐसा संयोग हुआ कि रूपानुग भी उसी वायुयान में था। हम साथ-साथ बैठे और आपस में विचार करने लगे कि लास ऐंजिलेस में सम्भवतः क्या हो रहा होगा, जिससे प्रभुपाद इतने दुखी थे।

जब हम हवाई अड्डे पर पहुँचे, तो करणधर हमें लेने वहाँ आया था। उसने हमें बताया कि कुछ पुराने भक्त प्रभुपाद के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे थे और ठीक उसी दिन प्रभुपाद ने उनमें से बहुतों को संन्यास देकर धर्मोपदेश के लिए भेज दिया था। मेरे लिए यह सब बिल्कुल अचंभित कर देने वाला था और सचमुच मैं नहीं समझ पा रहा था कि उसका मतलब क्या था।

जब हम प्रभुपाद के कक्ष में गये, तो वे दुखी लग रहे थे और षड्यंत्र के कारण रक्तचाप की शिकायत करते हुए अपना सिर मल रहे थे।

तमाल कृष्ण : मैंने पेरिस से श्रील प्रभुपाद को एक लम्बा पत्र लिखा था कि हम योरप में अपने धर्मप्रचार के प्रयत्नों का किस प्रकार विस्तार करना चाहते थे, और अचानक मुझे कृष्णकृपामूर्ति से एक तार मिला जिसमें लिखा था "तुम्हारा २६ जुलाई का पत्र मिला। लास ऐंजिलेस तुरन्त पहुँचो।" मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मुझे याद है कि मैंने उसी दिन अपने आपको मुक्त किया और मैं उसी रात चल पड़ा, यद्यपि वहाँ के सारे कार्यकलापों का भार मुझ पर ही था।

जब मैं लास ऐंजिलेस पहुँचा, तो मैंने वहाँ रूपानुग, भगवान्, कीर्तनानन्द स्वामी और करणधर को पाया। मैं बड़े उत्साहयुक्त और आनन्दपूर्ण मनोस्थिति में था, क्योंकि मैंने इतना अधिक संकीर्तन किया था, और मुझे किसी कठिनाई का आभास नहीं था। किन्तु ये सभी भक्त अत्यन्त गम्भीर और उदास मनोस्थिति में थे और उन्होंने मुझे समझाने का प्रयत्न किया कि क्या हो रहा था। लेकिन सचमुच स्पष्टता के साथ मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैं तीसरे पहर देर से पहुँचा था और श्रील प्रभुपाद से मिल नहीं सका था।

अगले दिन बहुत सवेरे जब प्रभुपाद को सूचना दी गई कि मैं पहुँच गया था, तो उन्होंने मंगल आरती के पहले ही मुझे बुलाया। मैं ऊपर उनके आवास में गया और जब मैं दरवाजे में से अन्दर गया तो प्रभुपाद सिर नीचा किये अपने कक्ष मैं बैठे थे। उन्होंने ऊपर देखा और वे लगभग बीमार लग रहे थे। वे दुर्बल थे और बहुत दुखी दिख रहे थे। जब मैं उन्हें नमन कर रहा था, तब उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "क्या उन लोगें ने तुम्हें बता दिया है ?"

हां, किन्तु सच तो यह है कि मैं हर चीज ठीक-ठीक समझ नहीं सका था, लेकिन उनके प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा, "हाँ, उन्होंने मुझे कुछ बातें बताई हैं।" और प्रभुपाद बोले, "क्या तुम मेरी सहायता कर सकते हो ?" तो मैंने उत्तर दिया, "हाँ, श्रील प्रभुपाद," उन्होंने कहा, "क्या तुम मुझे यहाँ से बाहर ले जा सकते हो ?" मैंने कहा, "हाँ, श्रील प्रभुपाद।"

सच तो यह है कि मुझे नहीं लग रहा था कि मैं श्रील प्रभुपाद की सहायता कर सकता

था, लेकिन मैं इतना समझ सकता था कि मुझे हाँ कहना था। कोई यह कैसे कह सकता था कि, "नहीं, मैं नहीं कर सकता?" लेकिन मैं सहायता कहाँ तक कर सकता था? यह संसार की सबसे भारी चीज उठाने के समान था। गुरु इतने भारी थे, और तब भी मुझे हाँ कहना पड़ा।

अतः प्रभुपाद ने मुझसे आगे पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले जाओगे?" और मैंने कहा, "अच्छा, हम फ्लोरिडा जा सकते हैं।" वे बोले, "नहीं, वह काफी दूर नहीं हैं।" मैंने कहा, "मैं आपको योरप ले जा सकता हूँ।" वे बोले, "नहीं, वह भी अच्छा नहीं होगा। वहाँ भी समस्या हो सकती है।" "जो भी हो, उस समय हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके कि कहाँ जाना है। किन्तु प्रभुपाद ने कहा, "यहाँ जैसे आग लगी हो। मुझे तुरन्त जाना है। यहाँ जैसे आग लगी हो।"

प्रभुपाद ने रूपानुग, तमाल कृष्ण और भगवान को विश्वास में लिया और उनसे विभिन्न घटनाओं के बारे में बताया: उनकी डाक रोक ली गई थी, उनका नाम अशुद्ध छापा गया था, रथयात्रा में उनके रथ-आरोहण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। उन्होंने इन घटनाओं और अन्य संकेतों की चर्चा करके बताया कि कुछ व्यक्ति उन्हें पृष्ठभूमि में ढकेलकर उनके शिष्यों की पहुँच से दूर करना चाहते थे। वे लास ऐंजिलेस में नहीं रहना चाहते थे, वे संयुक्त राज्य में नहीं रहना चाहते थे, वे योरोप भी नहीं जाना चाहते थे। वे अपने शिष्यों की अपराध-भूमि से हट जाना चाहते थे। लेकिन जाने से पहले वे इस्कान की व्यवस्था देखने के लिए शासी मण्डल की स्थापना की अपनी योजना पूरी कर देना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने २८ जुलाई को निम्नांकित लेख-बद्ध कराया:

> मैं अधो—हस्ताक्षरकर्ता, <u>ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी</u>, ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८ श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज प्रभुपाद का शिष्य, १८ सितम्बर १९६५ को कृष्णभावनामृत आन्दोलन को आरम्भ करने के उद्देश्य से संयुक्त राज्य में आया। एक वर्ष तक मुझे कहीं शरण नहीं मिली। मैं देश के बहुत-से भागों में यात्रा करता रहा। तब मैंने जुलाई १९६६ में इंटरनेशनल सोसायटी फार कृष्ण कांशयसनेस, संक्षिप्तः इस्कान, के नाम और बाने में इस संघ का पंजीकरण कराया।... क्रमशः संघ की अभिवृद्धि हुई और एक के बाद एक इसकी शाखाएँ स्थापित होती गईं। अब उसकी अधोलिखित ३४ (चौतीस) शाखाएँ हैं। चूँकि हमारे कार्यकलापों में वृद्धि हो गई है, इसलिए मैं सोचता हूँ कि एक शासी मंडल आयोग (जो आगे जी.बी.सी. के नाम से निर्दिष्ट होगा) की स्थापना होनी चाहिए। मैं वृद्ध हो चला हूँ, ७५ वर्ष का हो गया हूँ, इसलिए मैं किसी भी समय मंच से

ओझल हो सकता हूँ, अतः मैं आवश्यक समझता हूँ कि अपने शिष्यों को निर्देश दूँ कि पूरी संस्था की व्यवस्था वे कैसे करेंगे। अलग-अलग केन्द्रों की व्यवस्था वे, एक अध्यक्ष, एक सचिव और एक कोषाध्यक्ष के माध्यम से अभी भी कर रहे हैं और मेरी सम्मति में वे अपना कार्य ठीक तरह से कर रहे हैं। किन्तु हम मन्दिर की व्यवस्था में, कृष्णभावनामृत के प्रचार में, पुस्तकों और साहित्यों के वितरण में, नये केन्द्रों की स्थापना में और भक्तों को सही कीर्तिमान प्राप्त करने के उद्देश्य से शिक्षा देने में और अधिक सुधार लाना चाहते हैं। अतएव, मैंने निम्नांकित सिद्धान्तों के अनुगमन का निर्णय लिया है और मुझे आशा है कि मेरे प्रिय शिष्य उन्हें कृपापूर्वक स्वीकार करेंगे।

प्रभुपाद ने तब उन बारह व्यक्तियों के नाम लिखाए, जिनसे जी.बी.सी. का निर्माण होना था :

१. श्रीमान् रूपानुग दास अधिकारी
२. श्रीमान् भगवान दास अधिकारी
३. श्रीमान् श्यामसुन्दर दास अधिकारी
४. श्रीमान् सत्स्वरूप दास अधिकारी
५. श्रीमान् करणधर दास अधिकारी
६. श्रीमान् हंसदूत दास अधिकारी
७. श्रीमान् तमाल कृष्ण दास अधिकारी
८. श्रीमान् सुदामा दास अधिकारी
९. श्रीमान् बालि मर्दन दास ब्रह्मचारी
१०. श्रीमान् जगदीश दास अधिकारी
११. श्रीमान् हयग्रीव दास अधिकारी
१२. श्रीमान् कृष्णदास अधिकारी

ये व्यक्ति अब मेरे सीधे प्रतिनिधि माने जाते हैं। जब तक मैं जीवित हूँ, ये मेरे क्षेत्रीय सचिव होंगे और मेरी मृत्यु के पश्चात् ये एक्जीक्यूटर्स (कार्यपालक) कहलाएँगे।

प्रभुपाद ने आगे संन्यासियों की भूमिका का वर्णन किया :

> मैं अपने कुछ शिष्यों को संन्यास की दीक्षा दे चुका हूँ और इस सम्बन्ध में उन्हें बड़े महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों का पालन करना है। संन्यासियों को धर्मोपदेश के लिए और केन्द्रों के सदस्यों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्हें प्रबुद्ध बनाने के निमित्त भिन्न-भिन्न केन्द्रों की यात्रा करनी होगी।

प्रभुपाद के कानूनी आलेख में आगे जी.बी.सी. के सचिवों के लिए सामान्य निर्देश निर्धारित किये गये। सचिवों को अपने अपने क्षेत्रों में नियमित रूप से मन्दिरों की यात्रा करनी चाहिए, यह निश्चित करने के लिए कि हर भक्त सोलह मालाओं का जप करता है और नियमित समय-सारिणी का पालन करता है तथा सभी मन्दिर साफ-सुथरे रखे जाते हैं। प्रभुपाद के बारह सचिव मिलकर उन्हें व्यवस्था के भार से मुक्त करेंगे और संघ के अन्दर की सभी वर्तमान और भावी कठिनाइयों का समाधान निकालेंगे। प्रभुपाद के आलेख पत्र में उल्लेख किया गया कि यह समाधान तभी सम्भव होगा, जब प्रत्येक मन्दिर के भक्त पूरी तरह से नियमित भक्ति में लीन होंगे : वे प्रातःकाल साढ़े चार बजे मंगल-आरती के लिए उठेंगे, *श्रीमद्भागवत* की कक्षा में उपस्थित रहेंगे, संस्कृत श्लोकों का पारायण करेंगे, सड़कों में कीर्तन करेंगे और *बैक टु गॉडहेड* पत्रिकाएँ तथा अन्य कृष्णभावनामृत साहित्य का वितरण करेंगे। कृष्णभावनामृत के सिद्धान्तों का कठोर पालन व्यवस्था-विषयक अन्य सभी भौतिक नियमों के ऊपर होगा। जी.बी.सी. निश्चय करेगी कि हर एक के निर्धारित क्षेत्र में सभी भक्त समुचित रूप से व्यस्त हैं। माया को कोई स्थान नहीं मिलेगा।

अगले दिन प्रभुपाद ने एक अन्य महत्त्वपूर्ण वक्तव्य तैयार किया, जिसमें भगवान, रूपानुग और करणधर को उनके भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट का ट्रस्टी नियुक्त किया गया।

> भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट की धनराशि मेरी पुस्तकों और साहित्य के प्रकाशन और संसार-भर में मन्दिरों की स्थापना में व्यय की जायेगी, विशेषकर तीन मन्दिरों की स्थापना में, एक मायापुर में, एक वृन्दावन में और एक जगन्नाथपुरी में।

१९६७ में अमेरिका लौटने के बाद प्रभुपाद प्रायः कहते थे कि वे अपने शिष्यों के दत्तक पुत्र के रूप में अमेरिका में स्थायी रूप से रहेंगे। अब उन्होंने नई योजनाएँ प्रकट कीं। वे भारत जाकर वहाँ धर्मोपदेश और विशाल इस्कान मन्दिरों की स्थापना करने की बात करने लगे। ऐसे भक्तों के लिए जो किराए के छोटे मकानों से अपने धार्मिक कार्यों का संचालन करते थे, प्रभुपाद द्वारा भारत में विशाल गिरजाघरों के समान भवनों के निर्माण की बात अकल्पनीय थी। भारत में, प्रभुपाद ने कहा, वे अपने भक्तों को सिखाएँगे कि

धर्मोपदेश कैसे किया जाए और मन्दिरों की स्थापना कैसे की जाए।

प्रभुपाद ने अपने साथ भारत ले जाने के लिए एक दल तैयार किया, जिसमें दो नव-दीक्षित संन्यासी भी थे। उन्होंने कहा, भविष्य में वे और शिष्यों को अपने दल में शामिल करेंगे, क्योंकि भारत कृष्णभावनामृत के लिए एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बनेगा। प्रभुपाद ने सत्स्वरूप और उद्धव को बोस्टन लिखा :

> तुम लोग मेरे बच्चे हो, और मैं अपने अमरीकी लड़कों और लड़कियों को प्यार करता हूँ, जो मेरे गुरु महाराज द्वारा मुझे मिले हैं और जिन्हें मैंने अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार किया है। तुम्हारे देश में आने के पहले मैंने १९५९ में संन्यास लिया था। मैं बी.टी.जी. का प्रकाशन १९४४ से कर रहा था। संन्यास लेने के बाद मैं अपनी पुस्तकें लिखने में अधिक व्यस्त हो गया। भारत के अपने अन्य गुरु-भाइयों की भाँति मैंने मन्दिरों का निर्माण करने या शिष्य बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।
>
> इन मामलों में मेरी अधिक रुचि नहीं थी, क्योंकि मेरे गुरु महाराज बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण करने या कुछ नये शिष्य बनाने की अपेक्षा पुस्तकें प्रकाशित करना बहुत अधिक पसन्द करते थे। ज्योंही उन्होंने देखा कि उनके नये शिष्यों की संख्या में वृद्धि हो रही है, त्योंही उन्होंने संसार को छोड़ देने का निश्चय कर लिया। शिष्यों को स्वीकार करने का तात्पर्य यह है कि उनके जीवन की पापमय अनुक्रिया के फल का दायित्व स्वीकार करना।
>
> इस समय हमारे इस्कान के परिसर में राजनीति और कूटनीति का प्रवेश हो गया है। मेरे कुछ प्रिय शिष्य जिन पर मुझे बहुत अधिक भरोसा था, माया द्वारा प्रभावित होकर इस मामले में शामिल हो गये हैं। परिणामस्वरूप कुछ ऐसे कार्य हुए हैं, जिन्हें मैं अनादर युक्त समझता हूँ। इसलिए मैंने अवकाश-ग्रहण करने और अन्य कोई कार्य न करके पुस्तक-लेखन में ध्यान लगाने का निर्णय लिया है।

३१ जुलाई को प्रभुपाद ने ब्रह्मानंद और गर्गमुनि को लिखा कि वे भारत के लिए क्यों प्रस्थान कर रहे थे।

> अपने अन्य संन्यासी शिष्यों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से मैं स्वयं तीन अन्य संन्यासी शिष्यों के दल के साथ जापान जा रहा हूँ। यद्यपि यह मेरी शारीरिक क्षमता के बाहर की बात है, फिर भी मैं इसलिए जा रहा हूँ कि तुम

> लोग संन्यास के दायित्व को सीख सको।...
>
> मैं तुम लोगों से जोरदार अपील कर रहा हूँ कि तुम लोग संघ के ठोस शरीर में दरार मत पैदा करो। कृपा करके, बिना किसी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के मिलकर कार्य करो। इससे उद्देश्य-प्राप्ति में सहायता पहुँचेगी।
>
> यह वेदों का आदेश है कि आध्यात्मिक गुरु के साथ सामान्य व्यक्तियों जैसा व्यवहार नहीं होना चाहिए, यद्यपि आध्यात्मिक गुरु कभी कभी सामान्य व्यक्ति जैसा आचरण करता है। शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह उसे महामानव के रूप में स्वीकार करे। तुम्हारे पत्र के आदि भाग में सैनिक और सेनापति की तुलना समुचित है। हम कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में हैं—एक ओर माया हैं, दूसरी ओर कृष्ण हैं। इसलिए युद्धभूमि के नियामक सिद्धान्तों का पालन अर्थात् सेनापति के आदेशों का पालन अवश्य होना चाहिए। अन्यथा सैनिकों की लड़ने की क्षमता का निर्देशन और विरोधी तत्त्वों की पराजय असम्भव हो जायेगी। अतएव कृपा करके साहस बटोरिए। कार्य ठीक से कीजिए, जिससे हम अपने मिशन को ठीक दिशा में आगे बढ़ा सकें और अन्त में वह विजयी हो सकें।

प्रभुपाद ने और भी पत्र लिखे, जिनमें उन्होंने अपनी भारत-यात्रा की योजनाएँ प्रकट की।

> हमारा जीवन बहुत छोटा है, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का उद्देश्य किसी की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना नहीं है। वरन् यह सारे विश्व के लिए एक गम्भीर आन्दोलन है। इसलिए मैं जापान से आरम्भ करके पूर्वी गोलार्ध में जा रहा हूँ। हम चार व्यक्तियों का दल बनाकर जा रहे हैं और हम सभी संन्यासी हैं। इस वृद्धावस्था में मैं इस दल के साथ केवल अपने उन शिष्यों के लिए, जो हाल में संन्यास आश्रम में आये हैं, एक उदाहरण स्थापित करने जा रहा हूँ।

प्रभुपाद की भारत-यात्रा की तैयारी के रूप में उनके शिष्य देवानंद, जो अब देवानंद स्वामी हो गये थे, आव्रजन आवेदन-पत्र से उनसे प्रश्न पूछ रहे थे। वे यंत्रवत् प्रश्न पूछते जाते थे और प्रभुपाद उनका जो उत्तर देते उन्हें लिखते जाते थे। "क्या आपने कभी कोई आपराधिक कार्य किया है?" देवानन्द ने प्रार्थना-पत्र से पढ़ते हुए प्रश्न पूछा।

प्रभुपाद के नेत्र विस्फारित हो गये, "तुम अपने गुरु महाराज से पूछ रहे हो कि क्या उन्होंने कोई आपराधिक कार्य किया है?" और वे भगवान की ओर मुड़े : "देख रहे हो,

मैं ऐसे लोगों से घिरा हूँ, जिन पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। यह एक खतरनाक स्थिति है।"

प्रस्थान से पूर्व की रात में प्रभुपाद अपने बगीचे में बैठे थे। "क्षुब्ध मत हों," उन्होंने अपने साथ बैठे शिष्यों से कहा, "हम पीछे नहीं जा रहे हैं; हम आगे जा रहे हैं। मैं तुम लोगों को हर चीज बता दूँगा। मैं सब ठीक कर दूँगा।" उन्होंने कहा कि उनके कठोर वचनों और आलोचनाओं का उद्देश्य उनके शिष्यों को प्रबुद्ध बनाना, उन्हें सचेत करना और माया की सूक्ष्मताओं से उन्हें चौकान्ना कराना था।

करणधर ने चर्चा की कि मन्दिर के नेताओं ने ऐसी व्यवस्था की थी कि अगले दिन प्रभुपाद के साथ हवाई अड्डे तक केवल थोड़े से भक्त जायें। "यह विचार कहाँ से आया ?" प्रभुपाद ने पूछा, "*श्रीमद्भागवत* का आदेश है कि जब कोई संत-पुरुष तुम्हारे दल से अस्थान कर रहा हो, तो सभी उपस्थित लोगों को उसके वाहन के पीछे जहाँ तक सम्भव हो, जाना चाहिए, जब तक कि वह दृष्टि से ओझल न हो जाये।"

अतः अगले दिन सभी भक्त प्रभुपाद के साथ गये; वे लास ऐंजिलेस इंटरनेशनल एयरपोर्ट की लम्बी दीर्घा में आद्यंत उनके पीछे कीर्तन और नृत्य करते रहे। उनके साथ कई महीने रहने के बाद अब प्रभुपाद उन्हें छोड़ रहे थे। भक्तजन रुदन करने लगे।

नवीन परिधान धारण किये हुए और सद्य: मुण्डित मस्तक से प्रभुपाद तेजस्वी लग रहे थे। वे प्रस्थान कक्ष में बैठे थे, सिर ऊँचा किये हुए थे और हमेशा की तरह अथाह गम्भीर मुद्रा में थे। वे भगवान् चैतन्य के निमित्त एक नये अभियान पर जा रहे थे। उन्होंने कहा कि वे वृद्ध हो चले थे और हो सकता था कि वापस न लौटें, किन्तु उनके शिष्यों को चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक जारी रखें। "यदि तुम लोग इस नये कार्यक्रम का पालन करोगे, तो माया के आक्रमण से बचे रहोगे।" और तब वे उनसे विदा हो गये।

• • •

जापान के मार्ग में प्रभुपाद एक रात हवाई में रुके। वे एक मोटेल में ठहरे थे, और गौरसुन्दर और गोविन्द दासी उनसे वार्ता करने आये। गोविन्द दासी चाहती थी कि प्रभुपाद रुकें और उनके राधा-कृष्ण अर्चाविग्रहों को मन्दिर में स्थापित करें। प्रभुपाद ने कहा कि यदि गौरसुन्दर राजी हो तो वे कुछ दिन और रुककर अर्चाविग्रहों की स्थापना कर सकते थे। "मुझे परामर्श लेने दें" गौरसुन्दर ने उत्तर दिया। और अगले दिन प्रभुपाद हवाई जहाज से जापान चले गये। जापान से उन्होंने गोविन्द दासी को लिखा।

> यह जानकारी बहुत उत्साहवर्धक है कि लोग मेरे विषय में पूछताछ कर रहे थे और मेरा भाषण सुनने को उत्सुक थे। मैं वहाँ एक या दो दिन और रुक सकता था, कोई जल्दी नहीं थी, परन्तु तुमने कोई प्रबन्ध नहीं किया। मैंने स्वयं गौरसुन्दर से प्रस्ताव किया कि मैं अर्चाविग्रहों की स्थापना करूँगा, और उसने उत्तर दिया, "मुझे परामर्श करने दें।" लेकिन उसने उस परामर्श के परिणाम से मुझे अवगत नहीं कराया और न ही इस बात से कि उसने परामर्श किससे किया। सो, हमारे इस्कान संघ की वर्तमान स्थिति यही है। इससे स्पष्ट है कि बहुत शरारतपूर्ण प्रचार चुपके-चुपके किया गया और फलस्वरूप बहुत प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। और उससे मैं बहुत दुखी हुआ हूँ। अभी भी संघ को इस शरारतपूर्ण प्रचार से बचाने का समय है और मुझे आशा है कि तुम सभी मिलकर अपेक्षित कार्य करोगे।

टोकियो हवाई अड्डे पर प्रभुपाद का स्वागत *कृष्ण दि सुप्रीम पर्सनालिटी आफ गॉडहेड* और *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका की बीस हजार मासिक प्रतियों के मुद्रकों, दाईनिप्पन प्रिंटिग कम्पनी के कार्यवाहकों ने किया। प्रभुपाद और उनके दल के लोग दाई निप्पन के सौजन्य से प्राप्त एक लिमोसिन में सवार होकर एक छोटे-से निजी आवास में गये, जो मन्दिर से लगभग पैतालीस मिनट की दूरी पर था।

प्रभुपाद को सख्त खांसी हो गई थी और उनमें स्वास्थ्य की खराबी के और भी कई लक्षण उभर आये थे। उन्होंने कहा कि यह सब उनके शिष्यों के व्यवहार के कारण था। स्वास्थ्य के खराब होते हुए भी इस्कान को लेकर उन्हें जो चिन्ता थी उसके विषय में वे घंटों बातें करते, विशेषकर सह-यात्री, जी.बी.सी. के सचिव तमाल कृष्ण के साथ।

जापान में पहुँचने के तुरन्त बाद प्रभुपाद के सचिव को एक भक्त से, जो संघ-व्यापी जन्माष्टमी-समारोह में न्यू वृन्दावन में भाग ले रहा था, एक चिन्ताजनक टेलीफोन मिला। उसने बताया कि चार नवदीक्षित संन्यासी वृन्दावन में पहुँचे थे और वे एक विचित्र दर्शन सिखा रहे थे। सभी भक्त किंकर्तव्यविमूढ़ थे। संन्यासियों का कहना था कि प्रभुपाद ने अमेरिका इसलिए छोड़ दिया कि उन्होंने अपने शिष्यों को त्याग दिया था। संन्यासी अपने आपको और अन्य शिष्यों को दोषी ठहरा रहे थे कि उन्हें इसकी अनुभूति नहीं हुई कि प्रभुपाद वास्तव में कृष्ण थे।

प्रभुपाद ने जब यह सुना तो वे बोले, "यही कारण है कि मैं नहीं गया। मैं जानता था कि यह होगा। यह "मायावाद" है। उन्होंने गुरु और कृष्ण विषयक मायावाद की परिभाषा इन शब्दों में दी कि यदि कोई कहता है कि गुरु भगवान् हैं, या यदि गुरु स्वयं कहते है कि वे भगवान् हैं, तो यही मायावाद दर्शन है।

मायावादियों के लिए आध्यात्मिक अनुभूति का तात्पर्य व्यक्ति का ब्रह्म, सर्व-व्यापी आत्मा से तादात्म्य की अनुभूति है। अपनी सारी साधनाओं और भौतिक समाज से विराग के बावजूद, और वेदान्तसूत्र और शंकर भाष्य के अध्ययन के बावजूद, वे भ्रमवश सोचते हैं कि 'कृष्ण का शरीर, नाम, लीलाएँ, सेवा, और भक्त सभी माया के विविध रूप हैं; और इसीलिए वे मायावादी कहे जाते हैं। मायावादी आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्यों पर कृष्ण का पवित्र नाम, कृष्ण की पवित्र लीलाएँ या कृष्ण का दिव्य रूप प्रकट नहीं करता, क्योंकि मायावादी उन्हें माया समझता है। इसके विपरीत गुरु सभी वस्तुओं के एकत्व का आख्यान करता है; वह अपने शिष्यों को बताता है कि अलग अस्तित्व और अहं की धारणा भ्रम है। मायावादी कभी कभी गुरु की तुलना सीढ़ी से करते हैं। सीढ़ी का उपयोग उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए किया जाता है, किन्तु यदि सीढ़ी की और अधिक आवश्यकता न हो, तो वे उसे लात मार देते हैं।

बीच-बीच में खाँसते हुए और शारीरिक कष्ट के साथ बोलते हुए प्रभुपाद ने मायावादियों की खतरनाक भ्रामक धारणाओं को समझाया। मायावादी गुरु के विषय में, गुरु की उपासना के विषय में और गुरु की शिक्षाओं के विषय में सस्ती, लौकिक दृष्टि रखते हैं। यदि कोई कहता है कि गुरु भगवान् है और भगवान् कोई व्यक्ति नहीं है, तो इसका तर्कपूर्ण तात्पर्य यह हुआ कि गुरु का अपने शिष्यों के साथ शाश्वत व्यक्तिगत सम्बन्ध कोई नहीं है। अन्ततः शिष्य गुरु के समान हो जायेगा, या दूसरे शब्दों में वह अनुभव करेगा कि वह भी भगवान् है।

वैदिक शास्त्र से तर्क देते हुए प्रभुपाद ने मायावादियों के दावों का खंडन किया। उन्होंने कहा कि हर व्यष्टिक आत्मा कृष्ण का शाश्वत सेवक है और यह स्वामी-सेवक का सम्बन्ध शाश्वत है। अतः कृष्ण की सेवा आध्यात्मिक क्रिया है। किन्तु केवल गुरु की सेवा से ही कृष्ण के साथ शाश्वत सम्बन्ध को पूरी तरह पुनर्जीवित किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में आध्यात्मिक गुरु की सेवा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। वे भगवान् के प्रतिनिधि हैं, भगवान् से जोड़ने वाली सीधी, स्पष्ट कड़ी है। उनके माध्यम के बिना भगवान् तक कोई नहीं पहुँच सकता। भगवान् कृष्ण कहते हैं, "जो सीधे मेरे भक्त हैं, वे वास्तव में मेरे भक्त नहीं हैं। किन्तु जो मेरे सेवक (आध्यात्मिक गुरु) के भक्त हैं, वे सचमुच मेरे भक्त हैं।"

प्रभुपाद ने अपने शिष्यों से घंटों अभ्यास कराया। वे कोई मायावादी तर्क प्रस्तुत करते, तत्पश्चात् अपने शिष्यों से उसका खंडन करने को कहते। यदि वे न कर सकते, तो प्रभुपाद स्वयं उसका खंडन करते। उन्होंने बल देकर बताया कि आध्यात्मिक गुरु और उनके शिष्य के बीच का सम्बन्ध शाश्वत होता है—इसलिए नहीं कि आध्यात्मिक गुरु कृष्ण हैं, वरन्

इसलिए कि वे कृष्ण के शाश्वत विश्वसनीय सेवक हैं। एक सच्चा गुरु कभी नहीं कहता कि वह कृष्ण है या कृष्ण निराकार हैं।

भक्तों की समझ में आने लगा कि श्रील प्रभुपाद के पद के महत्त्व को कम करने का अपराध मायावादी दर्शन का प्रतिफल था। मायावादी के दृष्टिकोण से गुरु के प्रति भक्ति में अभिवृद्धि अनावश्यक है; यदि व्यक्तिगत सम्बन्ध अन्ततः माया है, तो माया में वृद्धि क्यों की जाये? यदि स्वामी-सेवक सम्बन्ध अन्ततः माया है, तो शिष्य अपने गुरु को जितना ही कम अपने स्वामी के रूप में और अपने आपको सेवक के रूप में देखता है, वह उतना ही आगे बढ़ता है। मायावाद दर्शन सूक्ष्म घातक विष था।

प्रभुपाद कम-से-कम इस कष्ट से बच गये कि वे व्यक्तिगत रूप में न्यू वृन्दावन में उपस्थित नहीं थे, जहाँ उन्हें उनके कुछ शिष्यों की मायावादी बकवास और अन्यों में से अधिकतर के विस्मयकारी अज्ञान को अनुभव करना पड़ा था। उनके साथ उनका छोटा-सा दल था और वे धर्मोपदेश के लिए भारत जा रहे थे। टोकियो में अधिवास के दौरान वे प्रयत्न करेंगे कि अपने साथ ले जाने के लिए *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका और "*कृष्ण*" पुस्तक की बहुत-सी प्रतियाँ प्राप्त करें।

• • •

प्रभुपाद ने जन्माष्टमी अपने निवास पर मनाई। अपने शिष्यों से वे दिन-भर 'कृष्ण दि सुप्रीम पर्सनालिटी आफ गॉडहेड' से ऊँची आवाज में पढ़वाकर सुनते रहे। उन्होंने कहा कि यदि वे पढ़ते रहें, तो पूरी पुस्तक एक दिन में समाप्त कर सकते थे। भक्तों ने पत्तियों और फूलों को भीतरी छत और दीवारों से टांगकर, उनके कमरे को सजा दिया था और प्रभुपाद अपने छोटे डेस्क के पीछे एक पतली चटाई पर बैठे कृष्ण की लीलाओं के बारे में सुन रहे थे। दिन-भर व्रत रखने के बाद ९ बजे रात में भक्त अभी तक उनके लिए पढ़ रहे थे, जब उन्होंने पूछा क्या वे आधी रात तक पुस्तक समाप्त कर सकेंगे। भक्तों ने उत्तर दिया कि वे ऐसा नहीं कर सकेंगे।

"तब तुम रुक जाओ, और मैं पढ़ूँगा।" प्रभुपाद ने *श्रीमद्भागवतम्* के संस्कृत संस्करण का दसवाँ स्कन्ध खोला और वे अगले दो घंटे तक संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ करते रहे। "तुम संस्कृत नहीं समझ सकते," उन्होंने कहा, "किन्तु मैं जानता हूँ कि तुम इन श्लोकों को अनुभव कर सकते हो। ये श्लोक इतने शक्तिशाली हैं कि उन्हें सुनने मात्र से कोई पवित्र हो सकता है।"

पाठ के बीच कीर्तनानन्द स्वामी और कार्तिकेय स्वामी ने रसोई-घर में भोजन तैयार किया। आधी रात को भक्तों ने श्रील प्रभुपाद को जन्माष्टमी का प्रसाद परोसा। केवल कुछ

ही कौर खाकर, उन्होंने देखा कि उनके शिष्य जी भरकर खा रहें है।

अगला दिन व्यास-पूजा का दिन था; वह प्रभुपाद का चौहत्तरवा जन्म-दिवस था; और वे टोकियो के इस्कान मन्दिर में गये। मन्दिर में केवल दो कमरे थे—एक कमरा रहने के लिए था और दूसरा पूजा का था, जिसके फर्श पर जापानी घास से निर्मित चट्टाइयाँ बिछी थीं। प्रभुपाद वेदिका की दाहिनी ओर भगवान् जगन्नाथ को देखते हुए बैठे। उनके शिष्य उनके सामने फर्श पर बैठे, अपने गुरु महाराज की महिमा के बखान में गुरु अष्टक गाते हुए। किन्तु उनमें से कोई ठीक तरह से नहीं जानता था कि व्यास-पूजा उत्सव का संचालन कैसे किया जाये और थोड़ी देर बाद उन्होंने कीर्तन बन्द कर दिया। अगले कुछ कष्टकर असमंजसपूर्ण क्षणों में भक्तों ने अनुभव किया कि उनसे कुछ विशेष कार्य करने की अपेक्षा थी। लेकिन वह विशेष क्या हो?

प्रभुपाद क्रुद्ध लग रहे थे : "क्या तुम्हारे पास पुष्प-यात्रा नहीं है? क्या प्रसाद तैयार नहीं है?" भक्तों ने एक-दूसरे की ओर देखा। "यह व्यास-पूजा नहीं है," प्रभुपाद बोले, "तुमने व्यास-पूजा पहले नहीं देखी है? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि व्यास-पूजा कैसे मनाई जाती है, गुरु महाराज का सम्मान कैसे किया जाता है?" एक संन्यासी रोने लगा। "तमाल कृष्ण," प्रभुपाद ने कहा, "क्या तुमने नहीं देखा था कि मैंने अपने गुरु महाराज का जन्म-दिवस कैसे मनाया था? पुष्प कहाँ हैं?"

पुष्प? पुष्प? तमाल कृष्ण ने सोचा कि प्रभुपाद का तात्पर्य पुष्पान्न से होगा, जो चावल से बना एक विशेष व्यंजन था। "मुझे मालूम नहीं।" उसने कहा।

"बिना पुष्प के यह कैसी व्यास-पूजा है?" प्रभुपाद ने पूछा।

"हम कुछ मँगा सकते है, प्रभुपाद," तमालकृष्ण ने तत्परता व्यक्त की।

तमाल कृष्ण ने सुदामा को पकड़ा, "प्रभुपाद प्रसाद चाहते हैं। वे पुष्पान्न चावल चाहते हैं।" वे शीघ्रतापूर्वक रसोई-घर में गये और चावल तैयार करने लगे।

इस बीच मन्दिर में भक्तजन अपने ढंग से व्यास-पूजा की रस्म पूरी करने के लिए संघर्ष करने लगे। कीर्तनानन्द स्वामी खड़े हो गये हुए और 'कृष्ण, दि रिजर्वायर आफ प्लेजर" की प्रस्तावना से, जिसमें प्रभुपाद का संक्षिप्त जीवन-चरित सम्मिलित था, ऊंची आवाज में पढ़ने लगे। किन्तु प्रभुपाद ने बीच में टोक दिया; वे शिष्यों को झिड़कने लगे कि वे सब कुछ मनगढ़ंत और अनुचित ढंग से कर रहे थे। "यदि तुम लोग नहीं जानते, तो तुमने मुझसे क्यों नहीं पूछा कि इसे समुचित ढंग से कैसे करना चाहिए?"

वहाँ उपस्थित जापानी अतिथि अंग्रेजी भाषा नहीं समझते थे, लेकिन वे देख सकते थे कि गुरु महाराज क्षुब्ध थे। प्रभुपाद ने समझाया कि वैध भक्ति में हर वस्तु परम्परानुसार उचित ढंग से की जानी चाहिए, कोई चीज मनगढ़ंत नहीं होनी चाहिए। "हम व्यास-पूजा

कल फिर मनाएंगे।" उन्होंने कहा, "मेरे कमरे में आओ। मैं तुम लोगों को बताऊँगा कि क्या करना होता है।"

अगले दिन एक सादे, परम्परागत समारोह के बाद भक्त भावविभोर हो उठे। बाद में वे सहमत हुए : जब कोई अपने गुरु महाराज को अप्रसन्न कर देता है, तो प्रसन्नता नहीं मिल सकती। किन्तु ज्योंही गुरु महाराज प्रसन्न हो जाते हैं, शिष्य आनन्दमय हो जाता है।

• • •

न्यू वृन्दावन में जन्माष्टमी–व्यासपूजा एक दु:स्वप्न बन गई थी। ईस्ट कोस्ट से सैकड़ों भक्त वहाँ इकट्ठे हुए थे; उनके साथ बहुत–से भक्त कैलीफोर्निया और योरप तक से आये थे। वे एक आनन्दपूर्ण उत्सव के लिए आये थे, लेकिन उसके स्थान पर उन्होंने पाया कि श्रील प्रभुपाद के नवदीक्षित संन्यासी एक अनिष्टकारी दर्शन का आख्यान कर रहे थे।

संन्यासियों ने यत्र–तत्र अनौपचारिक रूप से वार्तालाप करते हुए बताया कि किस प्रकार भक्तों ने प्रभुपाद को अप्रसन्न कर दिया था और किस प्रकार उन्होंने अपनी कृपा वापस ले ली थी। संन्यासियों ने अपनी अतर्दृष्टि का रहस्योद्घाटन किया कि प्रभुपाद वास्तव में भगवान् थे, कि उनके शिष्यों में से किसी ने उन्हें इस रूप में पहचाना नहीं था और इसलिए संन्यासियों से आरम्भ करके उनमें से सभी उनके पद को घटाने के अपराधी थे। और यही कारण था कि प्रभुपाद भारत चले गये थे और अपने शिष्यों से उन्होंने अपनी कृपा वापस ले ली थी।

भक्तजन पराभूत थे। उनमें से कोई नहीं जानता था कि उत्तर में क्या कहे। संन्यासियों ने अपने प्रचार से सर्वत्र उदासी फैला दी थी, जो उन्होंने कहा, उचित ही थी। हर एक को अपने अपराध का अनुभव होना चाहिए और हर एक में यह अनुभूति होनी चाहिए कि उसने अपने गुरु महाराज की कृपा को खो दिया था। हरे कृष्ण कीर्तन, भोजन या दावत से एक दूसरे को प्रसन्न करने की कोशिश व्यर्थ थी; हर एक को कडुवी दवा स्वीकार करनी चाहिए।

यद्यपि प्रभुपाद ने अपने शिष्यों को *श्रीमद्भागवतम्* के तीन खंड और उनके साथ *भगवद्गीता ऐज इट इज, दी नेक्टर आफ डिवोशन, टीचिंग्स आफ लार्ड चैतन्य* तथा अन्य साहित्य दिया था, तथापि भक्तों में से किसी को भी उनकी बाबत अच्छी जानकारी नहीं थी। बहुत–से भक्तों को इसमें सन्देह था कि क्या संन्यासियों द्वारा प्रचारित दर्शन सही था, किन्तु उनमें से किसी को भी शास्त्रों का इतना ज्ञान नहीं था कि उनका तुरन्त खंडन कर सकें। भक्तजन नये जी.बी.सी. अधिकारियों की ओर उन्मुख हुए, जो प्रभुपाद द्वारा इस्कान के नेता और अभिभावक नियुक्त हुए थे। जी.बी.सी. और अन्य वरिष्ठ भक्त, प्रभुपाद की

पुस्तकों में सावधानीपूर्वक यह खोजने में लग गये कि उन्होंने गुरु महाराज के पद के सम्बन्ध में ठीक-ठीक क्या कहा था।

तब हयग्रीव ने घोषित किया कि टोकियो से प्रभुपाद का एक पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है। ज्योंही सब भक्त मंडप की छत के नीचे पत्र सुनने के लिए इकट्ठे हुए, हयग्रीव पत्र जोर से पढ़ने लगा, "मेरे प्रिय पुत्रों और पुत्रियों..." और तब प्रभुपाद ने न्यू वृन्दावन के लगभग सभी निवासियों के नाम गिनाए। भक्तों को तुरन्त आशा की एक तरंग की अनुभूति हुई। प्रभुपाद से "मेरे प्रिय पुत्रों और पुत्रियों" सुनकर सब को बड़ी राहत हुई।

हयग्रीव ने पढ़ना जारी रखा, "सब को मेरा शुभाशीष।"

प्रभुपाद ने उन्हें अपने मन से त्याग नहीं दिया था!

पत्र में आगे कहा गया था कि श्रील प्रभुपाद न्यू वृन्दावन के भक्तों के कार्य से प्रसन्न थे और उन्होंने वादा किया था कि वे आयेंगे और उनसे मिलेंगे। उन्होंने कहा कि शीघ्र ही वे अन्य भक्तों को अपने पास भारत आने के लिए बुलाएँगे। उनका यह वर्णन सुनकर कि भारत में धर्मोप्रचार-कार्य किस प्रकार का होगा, उनके भक्त श्रील प्रभुपाद के धर्म-प्रचार की भावना के वेग में प्रवाहित-से होने लगे। वे प्रसन्नचित्त हो गये; वे आनन्दमय हो गये।

तब प्रभुपाद ने विशेष रूप से उस कठिनाई का निर्देश किया, जिसका सामना इस्कान को करना पड़ रहा था: "न्यू वृन्दावन से उस अ-वृन्दावन वातावरण को निकाल दो, जो वहाँ प्रवेश कर गया है।" उनके पत्र से विचारधारा मायावादी शिक्षाओं के विरुद्ध हो गई।

जी.बी.सी. ने तब सभी भक्तों की एक सभा मन्दिर-कक्ष में बुलाई। *दि नेक्टर आफ डिवोशन* से चुने हुए सन्दर्भ पढ़कर उन्होंने सिद्ध किया कि यद्यपि गुरु महाराज भगवान् नहीं हैं, तो भी उनका सम्मान भगवान् की तरह करना चाहिए, क्योंकि वे भगवान् के विश्वसनीय सेवक हैं। कई वरिष्ठ भक्तों ने अपना हार्दिक विश्वास प्रकट किया और यह सिद्ध करने के लिए प्रभुपाद के अपने साहचर्य से उदाहरण दिए कि उन्होंने भक्तों को अपने मन से निकाला नहीं था—वे अत्यधिक दयालु थे। उनमें से किसी एक ने कहा कि अपने दोष के कारण संन्यासी प्रभुपाद के मन से अपने आपको निष्कासित अनुभव कर सकते थे, लेकिन अपनी इस दोष-भावना को उन्हें दूसरों पर आरोपित नहीं करना चाहिए।

किन्तु झूठी शिक्षाओं से ऐसा धक्का पहुँचा था कि उससे उबरने के लिए बहुत-से भक्तों को समय की जरूरत थी। उत्सव में सम्मिलित नवागन्तुक विशेष रूप से द्विविधा में पड़ गये थे। किन्तु न्यू वृन्दावन पर जो उदासी के बादल छाए थे, वे हट चले थे, इसका श्रेय श्रील प्रभुपाद के सामयिक पत्र को था।

संन्यासियों ने अपनी उलझन स्वीकार की। तब जी.बी.सी. ने कीर्तनानन्द स्वामी को टोकियो टेलीफोन किया कि प्रभुपाद के पत्र से अधिकतर समस्याओं का समाधान निकल

आया था, किन्तु संन्यासियों की भ्राँत धारणाएँ तब भी बनी थीं। यह सुनकर प्रभुपाद को लगा कि उनके सन्देह की पुष्टि हो गई है। कुछ शिष्य भारत से पहुँची विषाक्त विचारधारा से प्रदूषित हो गये थे। फलस्वरूप सांसारिक शक्ति और अधिकार की लालसा से ही वे प्रभुपाद की उपस्थिति में भी अभिभूत हो गये थे।

तमाल कृष्ण, सुदामा और साथ के तीन संन्यासियों की ओर उन्मुख होते हुए प्रभुपाद ने पूछा कि उनके विचार से क्या किया जाना चाहिए। एक दिन पहले का दार्शनिक अभ्यास उनके मनों में अब भी ताजा था, उन्होंने राय दी कि जो कोई मायावाद दर्शन की शिक्षा देता हो, उसे इस्कान में नहीं रहने देना चाहिए। प्रभुपाद सहमत हुए। उन्होंने कहा कि यदि वे संन्यासी मायावाद दर्शन का प्रचार जारी रखते हैं, तो उन्हें इस्कान के मन्दिरों में रहने की अनुमति नहीं होनी चाहिए, वरन् उन्हें चाहिए कि वे बाहर चले जायें और अपनी ओर से 'प्रचार' करें। तमाल कृष्ण ने यह सन्देश संयुक्त राज्य में जी.बी.सी. को पहुँचा दिया और प्रभुपाद सन्तुष्ट थे कि समस्या हल हो जायेगी। उन्होंने अपने जी.बी.सी. का गठन ऐसे ही मामलों को निबटाने के लिए किया था।

२ सितम्बर को प्रभुपाद ने हंसदूत को जर्मनी में लिखा :

> हमारे संघ में विषैले प्रभाव का आ जाना एक तथ्य है और मैं जानता हूँ कि यह विषैला वृक्ष कहाँ से उगा है और इसने कैसे लगभग समस्त संघ को बड़े खतरनाक रूप से प्रभावित किया है; किन्तु इसकी कोई चिन्ता नहीं है। प्रह्लाद महाराज को विष दिया गया था, लेकिन इसने काम नहीं किया था। मेरा विचार है कि इस परम्परा-व्यवस्था में हमारे संघ को दिया गया विष भी निष्फल हो जायेगा, यदि हमारे कुछ शिष्य प्रह्लाद महाराज की भाँति उत्तम कोटि के हों। अत: मैंने जी. बी. सी. को प्रशासनिक अधिकार दिये हैं।

न्यू वृन्दावन में हयग्रीव को प्रभुपाद ने लिखा :

> मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि जी.बी.सी. उस विध्वंसकारी स्थिति को ठीक करने के लिए सक्रियतापूर्वक कार्य कर रही है, जो हमारे संघ की नींव को ही कमजोर बना रही है। जी.बी.सी. के आप सभी सदस्य इस सम्बन्ध में कृपापूर्वक हमेशा सावधान रहें, जिससे हमारा संघ ऐसे विषैले तत्त्वों से अबाधित रहते हुए विकास-पथ पर आगे बढ़ता जाये। न्यू वृन्दावन में आप लोगों का धर्म-प्रचार-कार्य और हमारे साहित्यों के गहन तथा मनोयोगपूर्वक अध्ययन बहुत

> अधिक उत्साहवर्धक हैं। इस कार्यक्रम को कृपा करके सोत्साह जारी रखें और हमारे आन्दोलन की मजबूती को फिर से स्थापित करें।
>
> मैं आरम्भ से निराकारवादियों का घोर विरोधी रहा हूँ और मेरी सभी पुस्तकों में इस विचार पर बल दिया गया है। इसलिए मेरे मौखिक निर्देश और मेरी पुस्तकें सभी आप की सहायता के लिए उपलब्ध हैं। अब आप जी.बी.सी. के लोग उन्हें देखें और उनसे स्पष्ट दृढ़ धारणा प्राप्त करें। तब आगे कोई गड़बड़ी न होगी। चारों संन्यासी भौंकते रहेंगे, किन्तु कारवाँ बढ़ता जायेगा।

प्रभुपाद ने बोस्टन में सत्स्वरूप को लिखा,

> मुझे प्रसन्नता है कि तुम संन्यासियों के इस प्रचार से प्रभावित नहीं हो कि मैं संघ के सभी सदस्यों से अप्रसन्न हूँ—मैं किसी भी सदस्य से अप्रसन्न नहीं हूँ।

प्रभुपाद ने सोचा कि सबसे खराब समय निकल गया है। महीनों से यह समस्या उन्हें चिन्ताकुल किये थी और उनके लेखन को प्रभावित कर रही थी। उन्होंने निरंतर गति से अपने शिष्यों को स्वयं, उनके हित के लिए और अपने आन्दोलन के हित के लिए शिक्षा दी थी, रोग ने अपना कर वसूल कर लिया था और यह दुर्भाग्यपूर्ण था। किन्तु भक्त प्रभुपाद की पुस्तकों की ओर मुड़ने के लिए और उनकी शिक्षाओं को अमल में लाने के लिए विवश हो रहे थे; और यह निश्चयात्मक परिणाम था। अब गुरु महाराज का पद उनकी समझ में अच्छी तरह आ जाना चाहिए और झूठी विचारधाराओं या भावनाओं के कारण उन्हें भटकना नहीं चाहिए।

• • •

टोकियो में प्रभुपाद का मुख्य काम दाई निप्पान से था। उन्हें एक महत्त्वपूर्ण लेखक और सम्मान्य धार्मिक भिक्षु समझकर कम्पनी ने उनके लिए एक कार और निवास की व्यवस्था कर दी थी। हर सवेरे दाई निप्पान कम्पनी की ओर से एक प्राइवेट कार आ जाती थी, जो प्रभुपाद को इम्पीरियल पैलेस पार्क ले जाती थी, जहाँ वे प्रातःकालीन भ्रमण कर सकते थे। प्रभुपाद को सफाई से रोपे गये वृक्ष और कंकरीला मार्ग पसन्द थे और वे जापानियों की आदतों की प्रशंसा करते थे। जब वे कहीं से गुजरते थे, तो वयोवृद्ध महिलाएँ कमर से झुककर उनको नमस्कार करती थीं और अन्य लोग, उन्हें संत-पुरुष समझकर आदरपूर्वक हाथ जोड़ते थे।

जिस प्रात:काल प्रभुपाद की भेंट दाई निप्पान से होनी थी, वे तमाल कृष्ण और देवानंद महाराज के साथ अपने कमरे से निकले और दाई निप्पान कम्पनी की कार की पिछली सीट पर बैठ गये थे। कार सवेरे सड़कों से होकर आगे बढ़ने लगी और प्रभुपाद मौन रूप से गायत्री मंत्र का जप करने लगे।

दाई निप्पान का एक कनिष्ठ अधिकारी प्रभुपाद और उनके दोनों शिष्यों को एक लिफ्ट में ले गया और उन्हें एक विशाल कमरे में ऊपर पहुँचाया, जहाँ एक लम्बी कॉंफ्रेंस टेबल लगी थी। प्रभुपाद बैठ गये; तमाल कृष्ण उनकी एक ओर और देवानन्द महाराज दूसरी ओर बैठे। शीघ्र ही दाई निप्पान के छह उच्चतम अधिकारी प्रविष्ट हुए, जिनमें कम्पनी के अध्यक्ष भी थे। हर एक अपनी कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया और अध्यक्ष से आरम्भ करके हर एक ने कमर से तनिक झुककर प्रभुपाद को नमस्कार किया और उन्हें अपना नाम-पत्र दिया। प्रभुपाद को 'कृष्णकृपामूर्ति' कहकर सम्बोधित करते हुए उन्होंने अपना परिचय दिया, अपने पद का नाम बताया और अपना आसन ग्रहण किया।

"आपको यहाँ पाकर हम बहुत गौरवान्वित हैं," अध्यक्ष ने आरम्भ किया, "आप एक महान् धार्मिक लेखक हैं और हमारा यह महान् सौभाग्य है कि हम आपकी पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं।" अध्यक्ष के संक्षिप्त भाषण के बाद चाय आई। प्रभुपाद ने गर्म दूध के लिए प्रार्थना की। वार्तालाप अनौपचारिक था और प्रभुपाद ने अपने मिशन और कृष्णभावनामृत साहित्य के महत्त्व के बारे में बताया। लेकिन व्यावसायिक विचार-विमर्श किसी की ओर से नहीं हुआ और दाई निप्पान के अधिकारियों ने शीघ्र जाने के लिए क्षमा-याचना की। अगले दिन सवेरे फिर मिलना निश्चित हुआ।

जब प्रभुपाद अपने शिष्यों और उनको लिवा लाने वाले जापानी कनिष्ठ अधिकारी के साथ कमरे में अकेले रह गये, तो उन्होंने उस युवा जापानी से पूछा, "तो जीवन में आपका लक्ष्य क्या है ?" उत्तर के रूप में युवक ने प्रभुपाद के सामने मेज पर बिखरे सभी कार्डों को इकट्ठा किया और उन्हें, क्रमवार सजाया, अध्यक्ष के कार्ड को उसने सबसे ऊपर रखा, फिर प्रथम उपाध्यक्ष के कार्ड को; इसी क्रम से वह करता रहा और अपना कार्ड सब से नीचे रखा। तब नाटकीयतापूर्वक उसने अपने कार्ड को गड्डी के नीचे से निकाला और उसे सब से ऊपर रख दिया—मानो प्रभुपाद के प्रश्न का यह सजीव उत्तर था।

प्रभुपाद मुसकराए। उन्होंने कहा कम्पनी का अध्यक्ष बन जाना अस्थायी था। सभी भौतिक जीवन अस्थायी हैं। *भगवद्गीता* के आधार पर उन्होंने समझाया कि शरीर अस्थायी है और आत्मा शाश्वत है। लोग जिन ख्यातियों और पदों के लिए परेशान रहते हैं, वे जीवन की शारीरिक धारणा पर आधारित हैं और एक दिन वे नष्ट हो जायेंगे। इसलिए जीवन का उद्देश्य अस्थायी संसार में एक अस्थायी कम्पनी का अस्थायी अध्यक्ष होना नहीं है, वरन्

परमात्मा के साथ शाश्वत आत्मा के सम्बन्ध की अनुभूति करना और शाश्वत जीवन प्राप्त करना है। प्रभुपाद लगभग आधे घंटे तक बोलते रहे और जापानी युवक विनम्रतापूर्वक सुनता रहा।

अगले दिन की बैठक में व्यवसाय-वार्ता आरम्भ हुई। कॉंफ्रेंस का कमरा विभिन्न था, टेबल पहले से छोटा था और दाई निप्पान के तीन अन्तर्राष्ट्रीय विक्रय प्रतिनिधि प्रभुपाद के आमने-सामने बैठे थे। प्रभुपाद ने अपना विक्रय मूल्य प्रस्तुत किया : १.३५ डालर प्रति पुस्तक।

"ओह, कृष्णकृपामूर्ति," एक विक्रय-प्रतिनिधि बोला, "यह मूल्य देना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। हमें बहुत घाटा होगा। हम यह वहन नहीं कर सकते।" प्रतिनिधियों ने कागज की कीमत और अन्य व्यय बताते हुए अपनी स्थिति स्पष्ट की।

प्रभुपाद अपने मिशन के बारे में बोलने लगे। उन्होंने कहा कि इस्कान की पुस्तकों का वितरण सारी मानवता के कल्याण के लिए एक धर्म का कार्य था। इस्कान इन पुस्तकों का वितरण, जो कुछ अनुदान लोग कर सकते हैं, उसके बदले में करता है, उनके लिए कोई लाभ या रायल्टी नहीं ली जाती। यह आध्यात्मिक शिक्षा के लिए सर्वाधिक मूल्यवान साहित्य है। "जो भी हो," अन्त में प्रभुपाद ने कहा, "इस सम्बन्ध में आप मेरे सचिव से बात करें।" और वे अपनी कुर्सी में पीछे होकर बैठ गये। अब भार तमाल कृष्ण पर आ पड़ा।

तमाल कृष्ण ने यह कहकर आरम्भ किया कि प्रभुपाद बहुत उदार थे, क्योंकि इस्कान वास्तव में इतनी ऊँची कीमत कभी नहीं दे सकता। तब तमाल कृष्ण ने हर पुस्तक की कीमत प्रभुपाद से चालीस सेंट कम बताई। "श्रीमान् तमाल," सेल्समेन फिर आकुल हो उठे, "कृपा करके अपनी बात पर फिर से विचार करें।" एक शालीन वाद-विवाद आरम्भ हुआ।

अचानक प्रभुपाद ने अपने आपको एक निष्पक्ष तीसरा दल बताते हुए हस्तक्षेप किया। उन्होंने कहा कि उनके सचिव और सेल्समेन के बीच जो अन्तर पैदा हो गया था, उसे वे सुलझा देंगे। "मैंने दोनों पक्षों को सुना है," उन्होंने कहा, "और मुझे लगता है कि मूल्य प्रति पुस्तक १.२५ डालर होना चाहिए। बस।"

"हाँ, कृष्णकृपामूर्ति," सेल्समेन सहमत हुए, "यह ठीक है।"

आगे के वार्तालाप के फलस्वरूप प्रभुपाद ऐसे अनुबंध के लिए राजी हो गये, जिसमें *कृष्ण, दि सुप्रीम पर्सनालिटी आफ गॉडहेड* के प्रथम खंड का पुनर्मुद्रण और द्वितीय खंड का मुद्रण, *बैक टु गाडहेड* के दो अंकों का मुद्रण, *बैक टु गॉडहेड* का हिन्दी संस्करण का मुद्रण और एक नई पुस्तक *श्रीईशोपनिषद्* का मुद्रण शामिल था। इस्कान को नकद केवल

५००० डालर देना था, और दाई निप्पान को हर चीज उधार देनी थी।

प्रभुपाद ने अपने कमरे में दाई निप्पान के प्रतिनिधियों को दावत दी। उन्हें समोसे और पकौड़े विशेष रूप से पसन्द आये। दाई निप्पान की ओर से प्रभुपाद को एक घड़ी उपहार दी गई और टोकियो के उनके अधिवास काल में उनकी हर सुविधा का ध्यान रखा गया। प्रभुपाद की भेंट कनाडा में पैदा हुए एक जापानी लड़के ब्रूस से भी हुई, जिसकी कृष्णभावनामृत में गहरी अभिरुचि थी। प्रभुपाद ने उसे भारत आकर उनसे मिलने को आमंत्रित किया और लड़का उत्सुकतापूर्वक राजी हो गया। ●